



सन्मति साहित्य  
रत्न माला वा  
७१ वाँ रत्न

# अनेकान्तवादः एक परिशिष्टम्



लेखक  
विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न



प्रकाशक  
सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

रसिक

विजय मुनि शास्त्री, साहित्य रत्न

प्रकाशक

सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा

मुद्रक

विनाद प्रिंटिंग प्रेस आगरा

प्रथम प्रकाश

सन् १९६१

मूल्य

७५ रुपै

## लेखक की कलम से

जैन-ज्ञान की विचार पद्धति स्वयां मौलिक है। दास निक जगत में इस मौलिक विचारधारा ने विश्व के विद्वानों को एक नया दृष्टिकोण और एक नया दृष्टि बिन्दु प्रदान किया है। जैन-ज्ञान की भूमिभूमि इस तत्त्व चिन्तन पद्धति ने तत्त्व निर्णय के क्षेत्र में एक नया अद्भुत काम किया है। अनेकान्त-दृष्टि का अर्थ है—समन्वय-दृष्टि। समन्वय का विना मनुष्य जीवन में मुक्त शान्ति और आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। यदि मनुष्य अपने विचारों का आग्रह करने बंद जाए और जो कुछ उसने अभी तक जाना और सीखा है उसको ही सत्य माने तो बनाए सत्य का निर्णय बने होगा। सत्य अनन्त है। उस अनन्त सत्य की किसी एक ही दृष्टि कोण से नहीं जाना जा सकता। सत्य के वास्तविक स्वप्न का जानने के लिए समन्वयात्मक ही कोण परम आवश्यक है।

सत-मस्ति के प्राण प्रतिष्ठापक और समन्वय सिद्धांत का प्रणेतृ भगवान् महावीर ने तत्त्व विचार की एक मौलिक एवं दिव्य पद्धति जगत को प्रदान की। यही नहीं उन्होंने वस्तु के स्वप्न को समझने की एक साधक भाषा पद्धति भी दी। उन्होंने बनाया—विचार अनेक हैं उन विचारों

का अभिध्यत करन की पद्धति भी अलग अलग है। अतः यदि कोई व्यक्ति अपने विचारा का प्रकाश, किसी पद्धति विधि से करता है तो उस सबका असाध्य नहीं कहा जा सकता। विचारा का यह अनाग्रह ही अस्तुत रामायण हृदि इ मनकान्त है और स्यान्त है। यह सिद्धान्त एक जीवन का सिद्धान्त है वह बस पोषी का सिद्धान्त नहीं है। आगे, आज का मानव अन्तःकाल के दिव्य सिद्धान्त का अपने जीवन के धरातल पर उतार पाना।

अस्तुत पुस्तक में मैं अनेकान्त हृदि, स्याद्वाद, अस्तु अनी और तय तथा प्रमाण एक निक्षेप आदि गम्भीरतम विषयों पर अक्षेप में तथा बहुत स्पष्ट रूप में विचार वर्णन का है। मनकान्तवात् एक परिशीलन जसी सधु पुस्तिका में मनकान्त जैसे गम्भीर एवं अस्तुत विषय का विवेचन कथमपि सम्भव नहीं है। जो सञ्जन उक्त विषय का गम्भीर एवं अस्तु अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिए तद्विषय साहित्य का पुस्तक के उपसंहार में उल्लेख कर दिया गया है। फिर भी इतना अवश्य है कि अस्तुत पुस्तक विषय-परिचय के लिए पर्याप्त है।

## समर्पण

जिनने  
परम-शक्ति पाद पद्मो म,  
रहकर मैं  
वक्तिपय ज्ञाण-करण  
प्राप्त किए हैं,

उन  
परम पूज्य गुरुदेव  
उपाध्याय, शक्तिरत्न  
शुद्धेय श्रमरचन्द्र जी  
महाराज  
के  
वर-शमलो म  
सभक्ति  
- विजय मुनि

## प्रकाशक की ओर से

साम्प्रति गानप'ठ क दार्शनिक साहित्य क अन्तगत अनेकात्तवाद एक परिमालन भत हो एक छोटी सी पुस्तिका हो परन्तु श्री विजयमुनि जी न इसमें अनेकान्त जैसे गम्भीर और विस्तृत विषय की मरल एवं सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है ।

पुस्तक की भाषा और शैली का यह स्पष्ट हो जाता है कि मुनिश्री का अनेकात्त सिद्धांत विषयक ज्ञान कितना सामान्य पूर्ण है । प्रथम अध्याय में विषय की स्थापना का ही सुन्दर ढंग में की गई है । दूसरे अध्याय में विषय का विवरण बड़ा ही रोचक शैली में प्रस्तुत किया गया है । तीसरे अध्याय में अनेकात्त से सम्बंधित अनेक विषयों पर विचारचर्चा की गई है । हमारे विचार में प्रस्तुत पुस्तक उन छात्रों और उन जिनासुषों के लिए विशेष उपयोगी है जो अनेकात्त और स्थापना के विषय में कुछ सोचना, कुछ जानना और कुछ समझना पसंद करते हैं । आशा है हमारा यह लघु प्रकाशन सबके लिये सिद्ध होगा ।

—मनी

सोनागाम जैन

साम्प्रति गानप'ठ क दार्शनिक साहित्य क अन्तगत

## विषय रेखा

विषय

पृष्ठ

अनेकान्तवाद की पृष्ठ भूमि (१ से १८)

१ सुख की आधार गिता अहिमा	३
२ अनेकान्त मानम अहिमा	५
३ स्यात्वाद एक भाषा पद्धति	७
४ मर्त्य का ज्ञान अनेकान्त म	९
५ अनेकान्त दृष्टि का आधार	११

अनेकान्तवाद का स्वरूप दर्शाने (१९ से ८०)

६ अनेकान्त दृष्टि	२१
७ वस्तु का स्वरूप	२७
८ एकान्तवाद म दोष	३३
९ एकान्तता का समन्वय अनेकान्त	३७
१० स्वप्न चतुष्टय	४१
११ स्यात्वाद	४९
१२ सप्त भंगी	५५
१३ नयवान्	६१
१४ प्रमाण	६७



विश्व समन्वय अनेकान्त पथ

सर्वोदय का प्रतिपाल गात्र ।

मन्त्री रक्षण सच जीवा पर,

जैन धम जग-ज्याति महान ।

## सुख की आधार-शिला अहिंसा

व्यक्ति समाज और देश के सुख और शान्ति की एक मात्र आधार शिला है—अहिंसा, मत्री और समता। भगवान् महावीर ने अहिंसा का ही सब सुख का मूल माना है। सुख सब का प्रिय है और दुःख सब को अप्रिय है। जो दूसरा को अभय देता है वह स्वयं भी अभय हो जाता है। अभय की मध्य भावना में ही अहिंसा और मत्री का जन्म होता है। दूसरे में भय होता है परन्तु जब सारे जगत् को व्यक्ति अपना ही रूप समझने लगता है तब दूसरा रक्तहीन जाना है? सब उसके हैं और वह भी सब का हो गया तब द्रव्य भाव कहीं रहा? अहिंसा मानव मानव में प्रकृत भाव पैदा करता है। अतएव अहिंसा का साधक सदा अभय होकर रहना है। भगवान् का ही जगत् मरा है—यह अहिंसा का प्रकृत मूल कारण है। मरा सुख, सब का सुख है और सब का दुःख मरा दुःख है—यह अहिंसा का नाशिका कारण है, व्यवहार-मार्ग है।

सहिता विनो भौतिक तद्व्य का नाम नही है वह ता मनुष्य के मन का एक वृत्ति है । सहिमा एक वृत्ति है, एक भावना है एक विचार है । मनुष्य व मन की छूर वृत्ति हिमा है और मनुष्य व मन की वासन-वृत्ति हा सहिमा है । प्रम सहिमा है यर हिमा है । सहिमा मनुष्य के मन का समृत है और हिमा विष है । सहिमा जीवत है और हिमा मरण है । सहिमा त्याग है और हिमा भोग है । सहिमा का परिणाम है—मुक्त, शान्ति और समता । हिमा का परिणाम है—दुःख, व्याकुलता और विषमता । सहिमा धर्म है और हिमा अधर्म है । सहिमा एक दिव्य प्रकाश है और हिमा घोर अंधकार है ।

## अनेकान्त : मानस-अहिंसा

अहिंसा का एक दूसरा पक्ष भी है—अनेकान्त । अनैकान्त का अर्थ है—मानस अहिंसा । दूसरे क दृष्टिकोण को समझने की भावना एक विचार का अनैकान्त दान कहने हैं । दूसरे क दृष्टिकोण और विचार क प्रति महिष्णुता और आदर भावना क बिना अहिंसा की पूर्णता नहीं हो सकती । सधय का मूल—आग्रह म है । आग्रह म अपन विचारा का माह होता है और दूसरा क विचारों का तिरस्कार होता है । एकान्त दृष्टि म सदा आग्रह का वास होता है । आग्रह म अमहिष्णुता उत्पन्न होता है और अमहिष्णुता में से हिंसा एक सधय पदा होन हैं । अनैकान्त दृष्टि अनैकान्त-मूलक होती है । यत उनम हिंसा और सधय का भय नहीं होना । जब जिन्य का कण-कण अनन्त धर्मों का भण्डार है वह विभिन्न दृष्टिकोणा स अनैक रूप म अनुभूति का विषय है नव अपन ही दृष्टिकोण का मत्य मानने का आग्रह रक्षना और समग्र धरकार करना, निश्चय ही हिंसा और अघर्ष की धार जाता है । इस हिंसा

अहिंसा जिसे भौतिक तत्त्व का नाम नहीं है वह तो मनुष्य के मन का एक वृत्ति है। अहिंसा एक वृत्ति है एक भावना है एक विचार है। मनुष्य के मन की सूरवृत्ति हिंसा है और मनुष्य के मन की कोमल-वृत्ति ही अहिंसा है। प्रेम अहिंसा है वर हिंसा है। अहिंसा मनुष्य के मन का समुत्त है और हिंसा विष है। अहिंसा जीवन है और हिंसा मरण है। अहिंसा त्याग है और हिंसा भोग है। अहिंसा का परिणाम है—सुख शांति और समता। हिंसा का परिणाम है—दुःख व्याकुलता और विषमता। अहिंसा धर्म है, और हिंसा अधर्म है। अहिंसा एक दिव्य प्रकाश है, और हिंसा पार अधीरा है।

## प्रनेकान्त मानस-अहिंसा

अहिंसा का एक दूसरा पक्ष भी है—अनकान्त । अनकान्त का अर्थ है—मानस अहिंसा । दूसरे क दृष्टिकोण का समझने की भावना एवं विचार को अनकान्त अहिंसा कहने हैं । दूसरे के दृष्टिकोण और विचार क प्रति अहिंसापूर्णता और आदर भावना के बिना अहिंसा का पूणता नहीं हो सकती । सत्य का मूल—आग्रह म है । आग्रह म अपने विचारों का मोह होना है और दूसरों के विचार का निरस्वार हाता है । एकान्त-दृष्टि म मया आग्रह का धार होता है । आग्रह म अहिंसापूर्णता उत्पन्न होती है और अहिंसापूर्णता म म हिंसा एवं सत्य पदा होने हैं । अनकान्त दृष्टि अनाग्रह-मूक होती है । अत उगम हिंसा और सत्य का भय नहीं होता । जब विव का कण-करण अनन्त धर्मों का भण्डार है वह विभिन्न दृष्टिकोणों से अनक रूप म अनुभूति का विषय है, तब अपने ही दृष्टिकोण को सत्य मानने का आग्रह रचना और उमरा अद्वार करना निश्चय ही हिंसा और सत्य की धार जाना है । इस हिंसा

और समय में बचने का एक मात्र उपाय है—अनेकान्त ।  
विचार की इस घड़िया का ही अनेकान्त दगन रत्न है ।

मानव का व्यापक दृष्टिकोण ही उसे सत्य की ओर  
न जाता है । मय मया व्यापक अनन्त और घसण्ड होना  
है । परन्तु मानव का परिमित ज्ञान उसे सम्पूर्ण रूप में  
जान नहीं पाता है । खण्ड रूप में हा वह सत्य का परिबोध  
कर पाना है । जन दगन की सत्यो-गुम्बी अनेकान्त दृष्टि,  
जन धम का सब-महिषणु घड़िया सिद्धान्त और जैन  
परम्परा की सम-वय भावना—य सोना विचार मनुष्य क  
दृष्टिकोण को व्यापक एक विगान्त बनाता है ।





ही है। परन्तु उसका अर्थ है—एक निश्चित दृष्टिकोण। स्याद्वाद का अर्थ को जानने वाला कभी भी वस्तु स्वरूप के प्रति अज्ञान नहीं करता। स्याद्वाद भाषा में नम्रता और सहिष्णुता का लक्षण ही वस्तु स्वरूप का वचन करता है।

---

## सत्य का ज्ञान : अनेकान्त से

मनुष्य में सत्य को गमन की ओर सत्य को जानने की महज जिज्ञासा ही है, क्योंकि वह जो कृत्र भी समझता है और जो कृत्र भी सुनता है उसे जानने का प्रयत्न भी करता है। परन्तु हमारी धारणा सीमित है, हमकी दृष्टि परिमित है। मनुष्य अल्पज्ञ है अल्प ज्ञान वाला है। विश्व में अनन्त पदार्थ हैं और एक-एक पदार्थ के भी अनन्त अनन्त पर्याय हैं समुच्चयन व्यवस्थाएँ हैं। फिर एक अल्पज्ञ मनुष्य एक ही पदार्थ की अनन्त पर्यायों का ज्ञान क्या प्राप्त कर सकता है? एक समय में वह किसी एक ही पदार्थ का ज्ञान सकता है और उसकी एक ही पर्याय का जानकर उसका बचन कर सकता है। जिस पदार्थ का किसी एक पर्याय का बचन किया है उसमें भिन्न अनन्त पर्याय उसी समय उस पदार्थ में अज्ञ भी विद्यमान हैं जो अवलम्ब्य व्यवस्था अनभिरूप्य दशा में स्थित हैं। अतः ज्ञान दृष्टि में विश्व का प्रत्यक्ष समुच्चय अनन्त धर्मालम्बक है। उदाहरण के लिए धातु जिम्मा भी एक पदार्थ का र बनने है।

जग भड़ा एक पदार्थ है । उस घट में रूप भी है गंध भी है रस भी है स्पर्श भी है और हल्का भारीपन आन्ध्रत्व भी अनन्त धर्म उसमें विद्यमान हैं । मनुष्य एक समय में उक्त अनेक धर्मों में किसी एक ही धर्म का कथन कर सकता है । राव का एक साथ ७ बहू कथन ही कर सकता है और न सब को बहू एक साथ जान ही सकता है ।

अनेकानुवाद एक ही है और स्याद्वाद एक भाषा नहीं है । अनवान्त और स्याद्वाद—दाना का मूल समन्वय में है । विभिन्न विचारों में जहाँ तक सम्भव हो सके, एकता का होना आवश्यक है । यदि एकता न हो सके तो मध्यस्थता हीकी चाड़िण । तभी समन्वय ही सनेगा तभी अनवान्तवाद और स्याद्वाद का प्रसार होगा । सब धर्म मिलकर एक ही जाएँ यह तो कभी सम्भव नहीं है । हाँ, यह सम्भव शक्ति में है, कि विभिन्न सम्प्रदायों के परस्पर के चर विरोध का उपशान्त हो सके । बस संयोजकवाद स्याद्वाद और अनवान्तवाद यही करता भी है । अनेकानुवाद का मध्य है—अपने आपको न छोकर सब में मिटे रहना ।

## अनेकान्त-दृष्टि का प्राधार

जन धर्म समभाव की साधना का धर्म है। समभाव समता एवं समदृष्टि तथा साम्य भावना—य सब जन धर्म के मूल तत्त्व हैं। श्रम क्षम धीर सम—य तीन नस्व जैन विचार के मूलाधार हैं।

जन परम्परा की प्राणभूत साम्य भावना का जैन धर्म में क्या स्थान है ? यह प्रश्न तो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जन परम्परा की साधना में सामायिक की साधना मूल में मुख्य साधना है। उक्त साधना में साम्य समता एवं समत्व योग पर ही पूरुणतया भार निया गया है। समत्व-योग मूलक जो भी विचार और जो भी आचार है वह सब तो सामायिक में धा ही जाता है। पट धावश्यक में सब ने पहला धावश्यक समता—सामायिक ही है। भरत एवं बाहुबली की कथा प्रसिद्ध है। वहाँ प्रहार में ने प्रेम प्रकटा। विषमता में ने समता जमी। चित्त गुडि का धीर आत्म परिष्कार का ९

जैस पहा एक पत्थर है । उस पट म रूप भी है, गंध भी है रस भी है स्पर्श भी है और हल्का भारीपन घाति धय भी अनन्य धम उसम विद्यमान हैं । मनुष्य एक समय म उक्त श्रेय धर्मों म रिभी एक ही धम का बधन कर सकता है । सब का एक माध १ वह कथन ही कर सकता है और न मद का वह एक साध जान ही सकता है ।

धनकान्त एक दृष्टि है और स्यात्वाद एक भाषा १ती है । धनकान्त और स्यात्वाद—श्रीना का मूल समन्वय म है । विभिन्न विचारों म जहाँ तक सम्भव हो सके एकता का होना आवश्यक है । यदि एकता न हो सके तो मध्यस्थता होना चाहिए । सभी समन्वय ही सकेगा तभी धनकान्तवाङ्मय और स्यात्वाद का प्रसार होगा । सब धम मित्रकर एक हो जाएँ यह तो कभी सम्भव नहा है । हाँ, यह सम्भव शक्ति म है कि विभिन्न सम्प्रदायों क परस्पर क कर विरोध का उपशमन हो सके । धम, समन्वयवाद, स्यात्वाद और धनकान्तवाङ्मय यही करता भी है । धनकान्तवाङ्मय का अर्थ है—धमन आपसी न लोकर सब म मिने रहना ।

## अनेकान्त-दृष्टि का आधार

जन-धर्म ममभाव का मापना का धर्म है। ममभाव समता एवं समदृष्टि का साम्य भावना—ये सब जन धर्म के मूल तत्त्व हैं। धर्म का धर्म और मम—य तीन तत्त्व जन विचार के मूलाधार हैं।

जन परम्परा की प्राणभूत साम्य भावना का जैन ज्ञान में क्या स्थान है ? यह प्रश्न तो बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। जन परम्परा की मापना में सामाजिक की मापना सब से मुख्य साधना है। उक्त मापना में साम्य समता एवं समत्व-योग पर ही पूर्णतया भार दिया गया है। समत्व-योग मूलक जो भी विचार और जो भी आचार है वह सब तो सामाजिक में ही जाना है। पर धार्मिक में सब १ फर्सा धार्मिक समता—सामाजिक ही है। अरुण एवं साहसियों की कथा प्रसिद्ध है। वही प्रहार में १ प्रथम प्रकटा। विषमता में ही समता जन्मी। विस्त-शुद्धि का और धार्मिक-परिष्कार का मापन—समता है।

उक्त समता अनेक रूपों में प्रकट  
की समता—अहिंसा बनती है ।

अनेकानुवाचक बनता है । समता की  
है । भाषा की समता—स्वाभाव

में साम्य-वृत्ति दो रूपों में १

२ विचार में ३ ७७

विचार साम्य भावना

के द्वारा अहिंसा का

सहज अन्वय

अन्वय की समता

और अन्वय में

है । अहिंसा ज

विचार समक

अहिंसा के

वाचिक

इस

७७

का कह न देता यह धारणा की अहिमा हुई । स्थाना  
धारणा की अहिमा ही सा है ।

२ मानसिक अहिमा—मन में किसी का किसी प्रकार  
का कर्म न देना यह विचार का अहिमा है । मनकान्त की  
विचार का अहिमा कह सकते हैं । विचार का आधार ही  
अहिमा है और विचारों का अनाग्रह ही अहिमा है ।

विचार की समता पर जब धारणा किया गया तब उपाय  
में सनेकान्त हृदि का अग्रह हुआ । अथवा अपनी हृदि का  
अपन विचार को ही पूरा साथ मानकर उस पर आधार  
रखना यह समता का विचार धारणा है । साम्य भावना  
ही सनेकान्त है । सनेकान्त एक हृदि है एक हृदिवासी है  
एक भावना है एक विचार है और मोक्ष की एक  
पद्धति है ।

जब सनेकान्त धारणा का रूप लेता है भाषा का रूप  
लेता है तब यह स्थाना मन जाता है । सनेकान्त विचार  
प्रधान होता है और स्थाना भाषा प्रधान होता है । मन  
हृदि जब तक विचार ही है तब तक यह सनेकान्त है ।  
और, हृदि जब धारणा का धोना पड़ती है, तब यह स्थाना  
मन जाती है हृदि जब आधार का रूप लेती है तब  
इसको अहिमा का नाम से पुकारते हैं ।



उन समता अनव रूपा में प्रकट हुन्ती है। आचार की समता—अहिंसा बनती है। विचार की समता—अनेकानु बनता है। समाज की समता—अपरिग्रह बनता है। भाषा की समता—स्वाभाव बनता है। जैन परम्परा में साम्य वृत्ति दो रूपा में ध्यत है—१ आचार में और २ विचार में। उन परम्पर का सब आचार और सब विचार साम्य भावना पर ही आधरित है। जिन आचार के द्वारा अहिंसा का संरक्षण न होता है, जैन परम्परा का यह नय आचार संधा एव सबप्रशारेण अमाय है। आचार की समता का नाम ही वस्तुतः अहिंसा है। अपने और अपने में निश्चल जीवन का सत्कार ही ही अहिंसा है। अहिंसा जैन धर्म का विचार केंद्र है। अय सभी विचार एक आस पास घूमने हैं। अन जैन परम्परा में अहिंसा के तीन रूप स्वीकृत हुए हैं १ वाचिक २ वाचिक और मानसिक। उन तीनों का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार में है—

१ वाचिक अहिंसा — तन में किमा को किमा प्रकार का कष्ट न लेना यह आचार की अहिंसा हुई। कथरि आचार का मुख्य वेद तन ही है।

का कष्ट न देना, यह सबकी बीछलिया हृदि । अन्तर्  
 वाली का अन्तर् ही लक्ष है ।

३ अन्तर्गत अन्तर्गत— सब की हृदि के अन्तर्  
 का कष्ट न देना यह अन्तर्गत का अन्तर्गत हृदि । अन्तर्गत की  
 अन्तर्गत का अन्तर्गत यह अन्तर्गत है । अन्तर्गत के अन्तर्गत के  
 अन्तर्गत है और अन्तर्गत के अन्तर्गत के अन्तर्गत है ।

अन्तर्गत का अन्तर्गत यह अन्तर्गत अन्तर्गत, यह अन्तर्गत  
 का अन्तर्गत हृदि का अन्तर्गत हृदि । अन्तर्गत अन्तर्गत हृदि का,  
 अन्तर्गत अन्तर्गत का हृदि अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत, यह अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत है । अन्तर्गत अन्तर्गत  
 ही अन्तर्गत है । अन्तर्गत अन्तर्गत हृदि है अन्तर्गत हृदि है  
 अन्तर्गत अन्तर्गत है, यह अन्तर्गत है और अन्तर्गत की अन्तर्गत  
 अन्तर्गत है ।

अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत है अन्तर्गत का अन्तर्गत  
 है अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है । अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत है और अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है । अन्तर्गत  
 हृदि अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है ।  
 अन्तर्गत, हृदि अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत है अन्तर्गत अन्तर्गत  
 अन्तर्गत है हृदि अन्तर्गत अन्तर्गत का अन्तर्गत है अन्तर्गत  
 अन्तर्गत अन्तर्गत के अन्तर्गत अन्तर्गत है ।

बुद्ध का विभज्यवाद और मध्यम मार्ग—अनेकान्ति और अहिंसा का प्रतीक हैं। भवन ही बौद्ध साहित्य में अनेकान्त एक अहिंसा शब्द न मिले पर इनका अर्थ प्रकट करने वाले विभज्यवाद और मध्यम प्रतिपत्ता तो हैं ही।

यदि वह परम्परा में भी अनेकान्त जन-दृष्टि को प्रकारान्तर से स्वीकार किया ही है। अस्तु भवन ही न हा पर भावना अवश्य है।

अनेकान्त क्या है ? अनेकान्त जन-दृष्टि का सब न मुख्य और सब न बड़ा सिद्धान्त है। यह जन विचार धारा का मूल आधार है। प्रत्येक परम्परा के दो पहलू होते हैं—आधार और विचार धर्म और दर्शन। धर्म बताता है कि मनुष्य को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। दर्शन बताता है कि तत्त्व क्या है ? और उसका स्वरूप क्या है ? क्योंकि धर्म का मूल आधार में ही और दर्शन का मूल विचार में। अतः मनुष्य का आधार उसका विश्वास और विचार का अनुसार होता है। परन्तु मनुष्य का आधार का प्रभाव भी उसके विचार पर पड़ता है।

धर्म और दर्शन में तथा आधार और विचार में अन्त ही अद्भुत सम्बन्ध है जैसा कि मनुष्य का शरीर और उसका

संभार है। जब इस रत्न को खोजने का काम है तो वह बहुत  
 विचारपूर्वक है। खजाना का खजाना है। यह भी है।  
 है। यह खजाना है।

दुर्लभ रत्न का है। यह एक ही है। यह खजाना है।  
 ही। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।

ये रत्न खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।

दुर्लभ रत्न का यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।

यह रत्न खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।

यह रत्न खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।  
 है। यह खजाना है। यह खजाना है। यह खजाना है।

किसी प्रकार का विरोध नहीं है। वस्तु या वस्तु-व विरोधी धर्मों के अस्तित्व में ही है। यदि वस्तु में विरोधी धर्म न रहे तो उसका वस्तुत्व ही नष्ट हो जाए। क्योंकि वस्तु यदि सबका एक रूप हो तो वह कुछ भी अथ क्रिया (कार्य) नहीं कर सकेगा और अर्थ क्रिया व अभाव में वस्तु का वस्तुत्व बस रह सकेगा। एक ही वस्तु में अनेक विरोधी धर्मों का रहना असम्भव नहीं। जस एक ही नारा में परस्पर विरोधी मातृत्व और पत्नीत्व असम्भवित नहीं है। क्योंकि सत्तान की अपेक्षा से जिसमें मातृत्व धर्म है पति की अपेक्षा से उसी में पत्नीत्व भी बिना किसी बाधा व रह सकता है।

जब वस्तु की एकान्त दृष्टि से देखा जाता है तब उसके वास्तविक स्वरूप का दृग्मन नहीं हो पाता। वस्तु का वस्तु-व अनेकान्त-दृष्टि से ही जाना जा सकता है। इस विषय में आचार्य हरिभद्र ने कहा है—

‘आश्रही चत निनीयति युक्ति सत्र,  
 अथ मतिरस्य निविष्ण ।  
 पण पात रहितस्य तु युक्तियत्र,  
 सत्र मतिरति निवेणम ॥’

क्याश्रही व्यक्ति की जिस विषय में मति होता है, उसी विषय में वह युक्ति का लगाता है। परन्तु निष्णा

अनि इसी ध्यान का व्याख्यान करना है (अ) हृत्ति स्थिति  
होगी है ।

एकान्तवासी कहना है कि जो वस्तु मनु है वह ध्यान  
कैसे हो सकता है और जो वस्तु निरन्तर है, वह ध्यान कैसे  
हो सकती है ? इसी प्रश्न का समाधान साधारण भक्तियोग  
न ही प्रकार दिया है—

सदेव तव को मन्त्रु,  
स्वरुपादिषुष्टयात् ।  
धमदेव विपर्यायात्  
न धेन एवनिष्टये ॥'

विश्व का प्रत्यक्ष धनु स्व धनुष का धरणा से मनु है  
और पर धनुष्य का धरणा न धमनु है । इस प्रकार का  
व्यवस्था क धमनु म विद्या भा मनु की मनुष्य व्यवस्था  
नहीं हो सकती ।

प्रत्यक्ष धनु का धरणा स्वल्प होता है जो धम  
धनुष्य के व्यवस्था से भिन्न होता है । उसका धरणा क्षेत्र,  
धरणा काल और धरणा साधन-धमनु भा होता है—इन्हीं  
का स्व धनुष्य कहने हैं । धरणा क्षेत्र, काल और  
साधन से भिन्न जो पर-धनुष्य क धनुष्य है न पर धनुष्य  
कहना है ।

घट घट द्रव्य की अपेक्षा से घट है। पर द्रव्य की अपेक्षा से घट नहीं। उसका अपेक्षा जो क्षेत्र है उसी की अपेक्षा से यह घट है पर-शून्य की अपेक्षा से घट नहीं है। जिस काल में यह है, उस काल की अपेक्षा से घट का सम्भाव है पर काल की अपेक्षा से घट का सम्भाव नहीं। अपने स्वभाव की अपेक्षा से घट का अस्तित्व है पर के स्वभाव की अपेक्षा से नहीं। घट अपनी अपेक्षा से घट है पर की अपेक्षा नहीं। घट अपना अर्थ तो नहीं है पर अर्थ प्रत्येक वस्तुओं की अपेक्षा से असत् है। घट यही उपनक्षण है। घट में सम्स्त वस्तुओं का ग्रहण करना चाहिए। घट घट सत् भी है और घट असत् भी है। वस्तु के स्वरूप निर्णय में एकान्त का कल्याण ही शीघ्रतर अनेकान्त का आशय देना चाहिए। सभी वस्तु के स्वरूप का निर्णय होगा।

अनेकान्तवाद  
का  
स्वरूप दर्शन



श्रीवा की प्रमाण-शुद्धि १

विश्व मदा विश्व-शुद्धि पर ।

श्रीवा विश्व-शुद्धि की गति नी

प्रमाण १ तद की गति पर ॥

## अनेकान्त-दृष्टि

जगती-तल पर जिनन भा धम हैं उन सब के दा पग होत हैं—आचार और विचार। विचार मान है और आचार शिवा है। बिना विचार के आचार अंधा है और बिना आचार के विचार पशु है।

जन धम बिन्दु का एक प्रमुख धम है। वह साधना का सर्वांगीण चित्र माधक के समक्ष उपस्थित करता है।

इस एक ओ वाक्य में संपूर्ण जन धम का जन उत्कृति का और अन्त-दर्शन का निश्चय आ जाता है, सारा सार संकलित हो जाता है। अहिंसा के सबंध में यहाँ प्रसंग प्राप्त न होने से कुछ भी कहा नहीं जाएगा। यहाँ पर केवल अनन्त के विषय में ही कहना होगा।

भारतीय दान परंपरा में आज और जगत् के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है—बहुत कुछ कहा गया है। प्रत्येक प्रवक्तृ न प्रत्येक अधि न और प्रत्येक आचार्य न अपने अभिमत सत्य को स्थापित करने के लिए दूसरा का स्पष्ट भी किया है, और न्यून किया है।

जीव क्या है ? और जगत् क्या है ? इन दोनों प्रश्नों का समाधान ही वस्तुतः ज्ञानशास्त्र है—भले ही उसमें धर्म-अभिमत सत्य का प्राग्रह ही क्यों न रहा हो ? राय धनन्त है, उस धनन्त सत्य का एकाग्र इतिहास पकड़ भी कम सकता है ?

दर्शनशास्त्र के इतिहास की गति विधि का गभीर अध्ययन करने वाले परम विद्वान्नाम यह रहस्य छुपा हुआ नहीं है, कि धर्म-जगत् में दो प्रतिवादा का प्रबल संपर्क चल पड़ा था—

एकांत नित्यवाद एकान्त अनित्यवाद । एकान्त मत् । एकान्त असत् । एकान्त भेदवाद एकान्त अभेदवाद । कूटस्थ नित्यता सर्वथा क्षणिकता ।

जीव और जगत् की लेकर इन्हीं बातों के तीव्र शस्त्रों में दार्शनिक एक दूसरे के साथ निमग्न होकर बौद्धिक युद्ध किया करते थे । जिसका परिणाम क्या भी सुझकर तथा हितकर नहीं हुआ । उस बौद्धिक विद्वेष का कारण और मुख्य परिणाम तत्कालीन समाज और देश पर भी पड़ बिना कैसे रहता ? फलतः मध्य विषमता का अधि-राज्य हो गया । धर्मिक और बोधकी लीला जमकर टकराई । बौद्धिक दर्शन का इतिहास भी कम भया-घट्ट नहीं है ।



प्रत्येक वस्तु—भने यह बात हा या अनेकान्त, चित्तभागात्मक होती है। प्रत्येक वस्तु में प्रतिगम्य उत्पाद अथवा घोर ध्रुवता रहती है। पूर्व भाग का नाग घोर उत्तर भाग का उत्पाद—यह प्रत्येक वस्तु में प्रतिगम्य होता रहता है। परन्तु उत्पन्न एवं विनाश का रहत हुए भी वस्तु अपने अथवा ध्रुव भी है।<sup>१</sup>

दृश्य दृष्टि में वस्तु में न उत्पाद है और न विनाश। दृश्य की अर्थशा में ता वस्तु अथवा है नित्य है। परन्तु पर्याय दृष्टि में वस्तु में प्रतिगम्य उत्पाद भी है और विनाश भी है। वस्तु में न अनात्म विनाश है न अनात्म उत्पाद है, और न अनात्म ध्रुवता है। अतः परस्पर निरर्थक नहीं हैं, बल्कि परस्पर सापेक्ष अथवा हैं। दृश्यात्मना वस्तु या पदार्थ नित्य है सत् है और अमित है परन्तु पर्यायात्मना वस्तु या पदार्थ अनित्य है, असत् है और अमित है।

भगवान् महात्मा की यह अनेकान्त-दृष्टि हा वस्तुन स्वात्म तत्त्वात् और सत्त भगवत्वाद का रूप में अकुरुित पल्लवित एवं पुंसुमित हुई है। इस अनेकान्त-दृष्टि को ही उत्तर भागी आचार्यों ने विनाश एवं विनाश रूप दिया है। मिथ्यात्व और अनात्मत्व, अमित और अमित हेमचन्द्र

१—वस्तु तत्त्व अतीत्यादध्यवधौत्यात्मकम् ।

और प्रभावशाली शक्तियों का एक सम्यो परमाणु  
अन्यान्वाद का परिणाम करता रही है।

अन्यान्-रति वस्तु के बिना एक ही धर्म का लक्षण  
विचार नहीं करती वह तो वस्तु के अनन्त घटों का संसार  
करता है। वस्तु के बिना एक ही धर्म को पहचान करके  
अन्यान्-रति एक ही धर्म ही है। फलतः वह वस्तु के  
अन्यान्-रति का नही जान पाता।



बनाए हुए सकारा को कोर घडा बढगा ? नही । क्या नहीं ? मिटती तो यही है । परन्तु नही आकार बदल जाने से उम घटा नहीं कह सकत । अच्छा, तो फिर यही सिद्ध हुमा कि घडा मिटटी का एक आकार विणाय--एक विणेषपर्याय है । परन्तु इसक साथ ही हमे ध्यान रखना चाहिए कि यह आकार विणाय मिटटी का सवथा भिन्न भी नही है । उस-उस आकार म परिवर्तित मिट्टी ही जब घडा सकोरा आनि नामा मे व्यवहृत होती है तो फिर घड का आकार और मिटटी—इन दोनो को भिन्न कस माना जा सकता है ? इस पर स ता यही सिद्ध जाना है कि घड का आकार और मिटटी—य दोना घट के स्वरूप हैं । अब उन दानों स्वरुपा म विनागी स्वरुप कौन-मा है और ध्रुव स्वरुप कौन सा है ? यह ता हम प्रत्यक्ष देखने हैं कि घड का आकार--पर्याय विनागी है । अत घट का एक स्वरुप ता जा कि घड का आकार विणाय है विनागी टहुरा । घट का दूसरा स्वरुप जो मिटटी है यह कमा है ? यह विनागी नहीं है । क्योंकि मिटटी क य आकारपरिणाम पर्याय बदला करते हैं परन्तु मिट्टी तो कौनो की वही रहती है । यह एक अनुभव सिद्ध बात है । इस तरह घट का एक विनागी और एक ध्रुव—य दो स्वरुप देख ता सकत हैं । इस पर स यही मानना पड़गा कि विनागी स्वरुप स घडा

अनिय भी है और ध्रुव स्वप्न में घटा नियम भी है। इस प्रकार एक ही वस्तु में भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों में नियम भाव और अनियम भाव का दान का अनेकानेक दर्शन कहे हैं।

विशेष स्पष्टता के लिए हम पर कुछ अधिक दृष्टिपात्र करें। मय पदार्थों में उत्पत्ति स्थिति और विनाश सने हुए हैं। हस्तान्त व तीर पर मान व एक हार का लें। माने व हार का साइबर बड़ा बनाया। उस समय हार का नाग हुआ और वृत्त की उत्पत्ति हुई। यह हम स्पष्ट दृष्टो हैं। परन्तु हार का साइबर हार में आ माना या उगा मोन का बनाया हुआ बड़ा सबथा नया ही उत्पन्न हुआ है यह नहीं कहा जा सकता। बड़ का गर्भवा नवीन तो तभी माना जा सकता है जब उसमें हार की वर्त भी वस्तु में आए। परन्तु जब हार का सभी का तभी माना बड़ में आया है वन हार का आकार ही बना है तो फिर वृत्त को सबथा नवीन उत्पन्न कम माना जा सकता है? सभी प्रकार हार का सबथा विनाश भी नहीं माना जा सकता। क्योंकि सबथा विनाश तो तभी माना जाए जब हार की वर्त भी वस्तु विनाश में न बची हो। परन्तु जब हार का गर्भवा सोना जल का तथा बड़ में आया है तो फिर हार को सबथा विनष्ट कैसे कहा जा सकता है? इस पर मैं यह बात अच्छी तरह से ध्यान में आ सकती है कि हार



का नाग हार—के आकार पर्याय के नाश तक ही सीमित है। यही तो हार का नाग है न? और बड़ की उत्पत्ति बड़ के आकार-पर्याय की उत्पत्ति तक ही सीमित है और यही तो बड़ की उत्पत्ति है न? जबकि इन दोनों—हार और बड़ का मुखण तो एक ही है। अतः हार और बड़ा एक ही मुखण के आकार भेदा पर्याय भेदों के प्रतिरिक्त और वृत्तन्ता है।

इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु - उत्पन्न व्यय और धीव्य रूप है। हर वस्तु बदलती भी है और हर वस्तु स्थिर भी रहती है। पर्याय की दृष्टि से उगम उत्पाद और व्यय हाता है इसी को वस्तु का परिवर्तन कहते हैं। परन्तु द्रव्य की दृष्टि से प्रत्येक वस्तु नियत है उसका कभी नाग नहीं होता है।

दीपक बुझ गया। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि दीपक का सर्वथा नाश हो गया। दीपक के परमाणु समूह कायम हैं। जिस परमाणु सघात से दीपक जला था वही परमाणु मघान रूपान्तरित हो जाने में दीपक रूप में नहीं दाक्षता, और इसलिए संधकार का अनुभव होता है। मूय की गरमा से पानी मूय जाता है उससे पानी का अत्यन्त अभाव नहीं हो जाता। वह पानी रूपान्तर में बराबर कायम ही है। जब एक वस्तु के स्पृश रूप का

नाम ही जाना है तब बड़े बन्धु गुणम धरण्या में धरणा  
 धरणा रूप में परिगुण हो जाना है । जिसमें बहुत पैर हुए  
 उगद रूप में बह न हीन— यह लक्षण है । बार्द गुण बन्धु  
 नहीं उत्पन्न नहीं हुआ ही धीर किसी गुण व तु का सर्वथा  
 नाम ही नहीं हुआ— यह एक धरणा मिथ्या है ।

बन्धु है— धरणा ही उत्पन्न नही हुआ धीर रूप का  
 नाम नहीं है ना ।

उत्पत्ति धीर नाम पर्याय का होता है । दूध का बना  
 हुआ दही तथा उत्पन्न नहीं हुआ है । दूध का ही परिणाम  
 नहीं है । यह कारण दूध-रूप में मत होकर दही रूप में  
 उत्पन्न हुआ है । धन के दोनों कारण ही है ।

इस पर मे मरु पर्याय— उत्पन्न विनाश धीर स्थिति—  
 धरणा स्वभाव का उत्पन्न है । जिसका उत्पन्न धीर  
 विनाश हुआ है उस तीन नामों में पर्याय करने है धीर

१—पयोवतो न दध्यति न पयो-ति दधिपत ।

अनोरसवतो मोन लक्ष्माद् बन्धु त्रयात्मकम् ॥

—आप्त मीमांसा

उत्पन्न दधिभावेन अथ पुण्यतया पर

गौरसम्बान्

जा मूल वस्तु स्थायी रहती है उसे 'द्रव्य' कहते हैं। द्रव्य की अपेक्षा में प्रत्येक पदार्थ नित्य है और पर्याय की अपेक्षा में अनित्य। इस तरह प्रत्येक वस्तु का एकान्त नित्य नाना एकान्त अनित्य नहीं। किन्तु नित्यानित्य रूप में अवयवकम अपेक्षा निरूपण करना ही अनैकान्त है।

---

## एकान्तवाद मे दोष

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने वाक्यागम-श्लोत्र के आठवें प्रकाश में एकान्त नियमवाद में शीघ्र एकान्त धर्मिन्यवान् में कुछ दोषण लिखे हैं जो इस प्रकार हैं—

आत्मन्येकान्तनित्ये न्याय भोग गुण-बुद्धयो ।  
 एकात्तानित्यकथे-पि न भोग गुण-बुद्धयो ॥२॥  
 पुण्यपापे बन्धमोक्षौ न नित्यकाल-दशने ।  
 पुण्यपापे बन्धमोक्षौ ना ऽ नित्यकाल-दशने ॥३॥

आत्मा का नित्य हो नहीं किन्तु एकान्त नित्य मानें तो एतका अर्थ यह होगा कि आत्मा में किसी प्रकार का अवस्थान्तर अथवा स्थित्यन्तर नहीं होता। किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा परिवर्तन नहीं होता। फिर तो आत्मा सर्वथा कूटस्थ नियम है यह मानना पड़गा। यदि यह मान लिया जाए तो गुण-बुद्धि आदि की भिन्न भिन्न समय भावी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ आत्मा में घटित नहीं हानी। आत्मा का नित्य मान करके भी यदि परिणामी

भिन्न भिन्न परिणामों में परिणामन करने वाला माना जाए तभी निरन्तर उत्पद्यमान और विनाशनील समग्र पर्यायी परिणामों में वह स्थायी स्थिति-शील हान में उसमें भिन्न भिन्न समय की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ—भिन्न भिन्न समय के भिन्न भिन्न परिवर्तन घट सकते हैं और भिन्न भिन्न समय में उससे किए हुए सत्कर्म-दुष्कर्म के अच्छे-बुरे फल चाहें जितने समय के बाद अथवा जन्मा क पश्चात्<sup>१</sup> भी, उमें मिल सकते हैं। कूटस्थ नित्य<sup>२</sup> माना पर तो

१ — मगवान् बुद्ध क पैर में एक चार चलते चलते काटा चुभ गया। उस समय उन्होंने अपने भिक्षुओं से कहा—

इत एकनवति-वल्पे शकत्या मे पुरयो हत ।

तेन कर्म विपाकेन पात्रे विद्धोऽस्मि भिक्ख ॥

— शास्त्रवार्ता समुच्चय

भिक्षुओं। हम भव से इकानव भव में मैंने एक पुरुष का घात द्वारा वध किया था। वध के फलस्वरूप भरे पर मैं काटा चुभा है।

२ — कूटस्थ, अर्थात् कूट यानी पर्वत क गिराव में भाति अथवा लोह क घन की तरह स्थिर किसी तत्त्व को सर्वथा अपरिणामी और निर्विकार बतलाने के लिए कूटस्थ शब्द का प्रयोग किया जाता है।

किसी प्रकार का अवस्थान्तर स्थित्यन्तर या भिन्न भिन्न परिणाम की गच्छना न होने में पुण्य-पाप की भिन्न भिन्न वृत्ति प्रवृत्तियाँ और सुख दुःख आदि की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ घट ही नहीं सकती । अतः स्वस्व रूप आत्मा ही नहीं किन्तु प्रत्येक अवतन जह पत्थाय म भी प्रतिक्षण होने वाला भिन्न भिन्न परिणामा का प्रवाह सतत चानू ही गता है । वस्तुमात्र परिवर्तन गीन है । कारण-क्षण म उसके पर्याय बदला करत है ।

जिस प्रकार आत्मा को एकान्त नित्य मानन में उमर की बातें सगत नहीं होठा उमा प्रकार आत्मा का एकान्त अनित्य सबथा क्षणिक मानने म भी वे ही गेप लड हात है । वस्तु के सतत निरन्तर परिवर्तन-शील पर्याय विवर्तों परिणामा-परिवर्तना म अनुसूत एक स्थायी द्रव्य मानना सबथा उचित है । आत्मा भिन्न भिन्न अवस्थाओं म—भिन्न भिन्न पर्याय म निरन्तर परिणम हाता रहता है फिर भी उन सब अवस्थामा म स्वय आग-रूप से नित्य असम्ब रहता है ।

किन्तु आत्मा को स्थायी नित्य असम्ब द्रव्य मानने के बदले केवल क्षण क्षण के पर्याय ही मानें तो यह होगा कि एक क्षण के पर्याय में जो कार्य किया था उसका फल दूसरे क्षण के पर्याय को ही मिलेगा । जिसन किया था उसे नहा मिला और जिसन नहीं किया था उस मिला ।

पर यह कितनी विसयति है ! इन दाया को कृत-नाग और महतागम का जाना है । 'कृतनाग का अर्थ है— जिसने जो किया हो, उमरा फल उम न मिसा और महतागम का अर्थ है— जिसने जो किया मदा है उमरा फल उम मिसना ।

इस तरह प्लान्स दाणिकवान म भी गुल-दुल का भाग, पुण्य-पाप और बन्ध-मोग की उपपत्ति घटित नहीं हाना ।



## एकान्तो का समन्वय • अनेकान्त

एकान्त सिद्धिवादी और एकान्त अस्िद्धिवादी—दोनों में दुपक्ष ही न कुट्टिमता के लिए वे बचपति काय्य नहीं हो सकते हैं। एक प्रकार के दोषों से बचने का एक ही उपाय है कि त्रैलोक्य में एकान्त बचपति सिद्धिवादी और बचपति अस्िद्धिवादी का स्थापना कर दिया जाए।

इस विषय में आचार्य अक्षयजी ने बादशाह-काल में कहा ही मुक्त समाधान दिया है, जो एक प्रकार का है—

गुणो हि कथं नु स्वाध्यायैर विमलारभय ।

हृषीकेशि न शनो मित मुक्तान्तर भेदने ॥१॥

एक कद करने काया है और और मिल जाय है। परन्तु इन दोनों के अर्थ में सिद्धिवादी में एक दोष नहीं मिला। इसी प्रकार एकान्त सिद्धिवादी अथवा एकान्त अस्िद्धिवादी में एक ही परन्तु सिद्धिवादी ही ही है।

मनु के स्वल्प में विद्या में अिच्छि अिच्छि अिच्छि के विभिन्न मन्त्रण है। वे अन्त-द्वेषीय गुण मनु कथ कथ का



केवल ध्रुव नित्य मानता है। चौद्व-दशन सत् पदार्थ को सबथा निरवय दणिक मात्र उत्पाद विनाश शील मानता है। सांख्य-दशन चेतन-तत्त्वरूप सत् को केवल ध्रुव कूटस्थ नित्य और प्रवृत्ति तत्त्वरूप सत् को परिणामी नित्य मानता है। न्यायिक-यौगिक सत् पदार्थों में स परमाणु कान आत्मा आदि कतिपय सत् पदार्थों को कूटस्थ नित्य और घट पट आदि सत् पदार्थों को मात्र अनित्य मात्र उत्पाद विनाश शील मानते हैं। परन्तु जैन दशन का मतव्य यह है कि चेतन या जड मूर्त या अमूर्त स्थूल या सूक्ष्म—मव सत् वहे जान वाले पदार्थ उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रूप में त्रयात्मक हैं।

पहने कहा जा चुका है कि प्रत्येक वस्तु में एक अणु ऐसा है जो सदा शाश्वत रहता है और दूसरा अणु अशाश्वत। शाश्वत अणु की दृष्टि में प्रत्येक वस्तु ध्रौव्यात्मक स्थिर है और अशाश्वत अणु की अपेक्षा से प्रत्येक वस्तु उत्पाद व्ययात्मक अस्थिर कहलाती है। इन दो अणुओं में से किसी एक ही अणु की ओर दृष्टि जान से वस्तु केवल अस्थिर रूप अथवा स्थिर रूप प्रतीत होती है, परन्तु दोनों अणुओं की ओर दृष्टि डालन से वस्तु का पूरा और यथाथ स्वरूप प्राप्त हो सकता है। अतः इन दोनों दृष्टियों से अनुसार ही जैन दशन वस्तु को उत्पाद व्यय और ध्रौव्य—द्वय प्रकार त्रयात्मक मनलाता है।

वस्तु का मदमदवाद भी अनेकान्तवादी है। वस्तु मनु  
 कहनाही है वह किस कारण ? अपने हाथ गुणा में  
 अपने ही धर्मों में प्रत्येक वस्तु मनु हा गवती है दूसरे  
 के गुणा में नहीं। दूसरी अपने गुणा में पुगी है  
 दूसरा के गुणा में नहीं। धनवान् अपने धन में  
 धनी है दूसरा के धन में नहीं। पिता अपना पुत्र की अपेक्षा  
 में पिता है दूसरा के पुत्र की अपेक्षा में नहीं। इसी  
 प्रकार प्रत्येक वस्तु अपने गुणा की अपेक्षा में अपने  
 धर्मों की अपेक्षा में सन् है दूसरों के गुण धर्मों की अपेक्षा  
 में नहीं।

एकान्त मुद्रामधिशय्यशय्या,

नय व्यवस्था किं न या प्रमोक्षा ।

तया विमीताधनस्यपु म

स्यात्वार ऽत्राञ्जनिक्वी शतका ॥

— पादरंताय न्नोन

## स्व-घर-चतुष्टय

इन्द्रगोत्र काय भाव में विचार काय पर पद धारि  
 तत्र चतुष्टय घने इन्द्र क्षेत्र काय घोर भाव को धारणा म  
 सन् है घोर दुमरा के इन्द्र क्षेत्र काय घोर भाव को धारणा  
 म सन् है । शीमे कि बाणा म, धारणा-काय म इन्द्र मित्री  
 का काया घरा इन्द्र म मित्री का है—मुनिवा-रूप है ।  
 परन्तु अमघारि रूप मरी है । म म बाणी म बना हुआ है  
 दुमरा क्षेत्र का नहीं है । काय की धारणा म गात काय म  
 बना हुआ है परन्तु दुमरा शत्रु का नहीं है । भाव की  
 धारणा म उगाय उगाय है अम्य धारणा का नहीं है ।

विचार रूप म दत्तने पर स्व म्भ्य स्व-भाष स्व-काय  
 घोर स्व भाव में म्भ्य सन् है घोर पर म्भ्य पर-क्षेत्र पर  
 काय घोर पर भाव म सन् है ।

ज्ञानधारि मृता रूप आव धने आव इन्द्र रूप म है  
 उद-म्भ्य व रूप म नहीं है । इसी प्रकार म्भ्य धारणा म्भ्य  
 रूप म है पर रूप म नहीं है । हर रूप वस्तु म्भ्य इन्द्र  
 रूप म है पर म्भ्य रूप में नहीं है ।

द्रव्य के प्रयोग को क्षेत्र कहते हैं। घट के व्यवय घट का क्षेत्र है। यद्यपि व्यवहार में आकार की जगह को क्षेत्र कहते हैं तथापि वह वास्तविक क्षेत्र नहीं है। जैसे 'दायात में स्याही है'। यहाँ पर व्यवहार में स्याही का क्षेत्र दायात कहा जाता है वास्तव में स्याही और दायात का क्षेत्र अलग अलग है। यदि दायात बाँच की है तो त्रिगजगह बाँच है उस जगह स्याही नहीं है और त्रिग जगह स्याही है उस जगह बाँच नहीं है। यद्यपि बाँच में स्याही को चारा मोर में घेर रखा है, फिर भी दोनों अपनी अपनी जगह पर है। स्याही के प्रयोग व्यवय ही जगह—स्याही का क्षेत्र है। जीव और आकार एक ही जगह रहते हैं परन्तु दोनों का क्षेत्र एक नहीं है। जीव के प्रयोग जीव का क्षेत्र है और आकार के प्रयोग आकार का क्षेत्र है। वस्तु के परिणामन को काल कहते हैं। जिस द्रव्य का जो परिणामन है वही उमरा काल है। एक मास अथवा वस्तुषा के अनेक परिणामन हो सकते हैं। परन्तु उनका काल एक नहीं हो सकता क्योंकि उनके परिणामन पृथक्-पृथक् हैं। घड़ी, घण्टा मिनट आदि में भी काल का व्यवहार होता है परन्तु यह स्व काल नहीं है। व्यवहार चलाने के लिए घड़ी, घण्टा आदि की कल्पना की है।

बस्तु के दुर्ग-शक्ति-परिहास का भाव रहा है । प्रत्येक बस्तु का भाव' स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है । क्योंकि एक बस्तु के विस्तृत समान हो ता उगम स्वभाव परस्पर समान या महान बने या न बन सके । किन्तु एक नहीं बने या न बन सके । क्योंकि एक स्वयं बने दुर्ग-शक्ति हमारे म नहीं होता ।

जब प्रकाश प्रत्येक बस्तु स्व स्वयं स्व-शक्ति स्वभाव और स्व भाव का समता में 'गन्तु है और वही बस्तु पर स्व पर-शक्ति पर काल और पर भाव की समता में समान है ।

जब समेक-तत्वात् पर एक दुर्ग-शक्ति म भी विचार करके देखिए । बस्तु मात्र म सामान्य धर्म और विशेष-धर्म रहे हुए है । भिन्न भिन्न धर्मों में 'घोड़ा' 'धोड़ा' इन प्रकार जो अकारण एक जैसे बुद्धि उत्पन्न होती है वह गूढिनी बनती है कि जब धर्मों में सामान्य धर्म अकारणता है । परन्तु अनेक घोड़ा म में समता घोड़ा घपवा घमुक घोड़ा या पत्थान लिया जाता है । इस पर में नहीं पाए एक दुर्ग में विषयना भिन्नता पुरुषता का भी भिन्न होने है । इस तरह सभी बस्तुओं सामान्य विषय अकारणता समझी जा सकती है । बस्तु का यह सामान्य विषय स्वल्प परस्पर भाषा है । इस तरह प्रत्येक बस्तु का सामान्य विषय अकारण रूप समझना—अनेकान्त-सुखी







स्वाभाव अथवा अनेकान्त-दान एक ही वस्तु में भिन्न भिन्न दृष्टि में अस्तित्व नास्तित्व, नित्यत्व अनित्यत्व आदि अनेक धर्मों का सम वय करता है। इस पर से यह समझा जा सकता है कि वस्तु-स्वरूप जिस प्रकार हो, उसी तरह उसकी विवेचना करनी चाहिए।

वस्तु-स्वरूप की जिज्ञासावाले किसी व्यक्ति ने प्रश्न पूछा कि—क्या यह अनित्य है? इसके उत्तर में यदि ऐसा कहा जाए कि—हाँ यह अनित्य ही है तो यह कथन अर्थहीन है या फिर अपूर्ण है। क्योंकि यह कथन यदि सम्पूर्ण विचार-दृष्टि के परिणाम स्वरूप कहा गया है तो यह अर्थहीन है। क्योंकि यह सम्पूर्ण दृष्टि में विचार करने पर अनित्य होने का साथ ही साथ नित्य भी मिश्र होता है। यदि यह कथन समुच्च दृष्टि में कहा गया हो तो इस वाक्य में यह कथन समुच्च दृष्टि में यह सूचना करने करने वाला कोई शब्द जानना चाहिए। उसके बिना यह उत्तर अधूरा सा लगेगा। इस पर से समझा जा सकता है कि यदि वस्तु का कोई भाग धर्म बतलाना ही तो इस तरह बतलाना चाहिए, जिससे दूसरा धर्म अथवा उसका प्रतिपक्ष धर्म जो उभय सम्भव हो उसका अस्तित्व उस वस्तु में ही दृष्टन में पाए। अतिसाय यह है कि किसी भी वस्तु को जब हम नित्य मानना रहे हैं तब

उसमें लेगा बार्न का जोड़ना चाहिए किन्तु उस बरतु म  
 रह हुए घनिष्ठ घर्ष का समाव सूचित न होन पाए ।  
 वह एक समुद्र भाषा म रवान है । म्यार्न शब्द का  
 घर्ष है—जैसा कि ऊपर बता है उस तरह समुद्र घर्षणा  
 म । म्यार्न एक घर्षणा उमा घर्ष भासा समुद्र  
 भाषा का बर्धित्त्वं एक भी है ।

म्यार्न और बर्धित्त्वं एक का प्रयोग करे म  
 बरतु-जन कि स्वयं घनिष्ठ एक घर्षों का निरोध नहीं होगा है ।



विना य नोक्ताणामपि न घटते सब्यवहृति,  
समर्था नैवार्थनिर्विगमयितु शब्द रचना ।  
द्वितण्डा चण्डालो स्पृशति च त्रिवाद-व्यसनि,  
नमस्तस्म कस्मच्चिदनिशमनेकात् महस ॥

—अनकारेण व्यथयति



आधार पर जैना न सिद्ध का शान्ति का शुभ मन्देश सुनाया था। धार्मिक असहिष्णुता और मानसिक सक्तीयता जैसे अमानवीय विषाक्त मानसिक विकारों का समूल उन्मूलन करने वाला स्याद्वाद ही है। परस्पर स्नेह एवं मदभात्र म रहन का सुन्दर पाठ मानव-समाज का स्याद्वाद न ही पलाया है। अपनी विनिश्चिता स्थापित करने के निमित्त स्याद्वाद किन्हीं भी धर्म या सिद्धान्त का खण्डन नहीं करता, किन्तु अपने शौचित्य के अनुसूच्य भिन्न भिन्न दृष्टिकोण का समन्वय एवं एकीकरण करता है।

स्याद्वाद क्या है ? उसकी मौलिक परिभाषा क्या है ? उसकी उपयोगिता जीवन-व्यापार के लिए किस रूप में है ? इन सभी प्रश्नों पर हम यहाँ संक्षेप से विचार करना होगा।

परिभाषा—स्याद्वाद का अर्थ १—विभिन्न दृष्टिकोणों का किन्हीं किम्बो पक्षपात के तटस्थ बुद्धि से समन्वय करना। जो महत्त्वपूर्ण कार्य एक न्यायाधीश का होता है। शीघ्र वहाँ कार्य विभिन्न विचारों के समन्वय के लिए स्याद्वाद का है। जिस प्रकार एक जड़ बाला और प्रतिवादी—दोनों पक्षों के ध्यान मुनकर और दाना पक्षा के दयानों की जांच पहचान करके निर्णय पेशता होता है उसी प्रकार स्याद्वाद भी विभिन्न विचारों का समन्वय उनमें समन्वय करता

है। यह तो हुआ स्याङ्ग का मोलिक मय। यह गान्धिक मय भी सुन चीजिन।

स्याङ्गद मम दा दशम का मधुनीकरण है—  
 'स्यान् + वा'। स्यान् का मय है—अपना या दृष्टिकोण  
 और वा का मय है—सिद्धान्त या मन्तव्य। दाता  
 गुण का समुच्चि अर्थ हाता—साधन सिद्धान्त  
 अर्थात्—वह सिद्धान्त या अपेक्षा का उकर चलता है और  
 भिन्न भिन्न विचारा का लकीकरण करना है। अनकालवा  
 अपेक्षावा कथचिद्वाद और स्याङ्ग—इन सब का एक  
 ही मय है। अनकाल और स्याङ्ग म बाह्यता अन्तर  
 अन्तर है और वह अन्तर कवन इतना ही है कि—  
 अनकाल एक व्यापक विचारपद्धति है और स्याङ्गद  
 एक ही अन्तर्गत करन की निर्णय भाषा पद्धति है।

स्याङ्गद रण्यविद् प्राचायो न स्याङ्ग का परिभाषा  
 न्त दाता म की है—अपन अपवा दूमर क विचारा  
 मन्तव्या, दचना तथा कार्यो म तमूनक विभिन्न अपेक्षा या  
 दृष्टिकोण का ध्यान रखता है। स्याङ्ग है। एव परि  
 भाषा का और अधिक स्पष्ट करन हुए प्राचाय अमृतचन्द्र  
 कहत है—

जिम प्रकार ग्वासिन मयन करन वा रस्ती क दा  
 एगारा में मे कभी एक को और कभी दूसर का साधती है

उसी प्रकार अन्यात पठति भा कभी वस्तु के एक  
मुख्यता देती है और कभी दूसरे धर्म को । १

देखिए साधारण ने किम भाषणों एवं  
भाषा में व्याख्याद का परिभाषा को है ? सुन्दर २  
गद हो जाता है और पाठक साधारण के स्वर में स्वर  
कर उल्लासपूर्ण स्वर में उद्घोष करता है—

जयति जैती नीति — जिन भगवान् शरा इति  
पान्ति मनेकान्त-नीति व्याख्याद सिद्धान्त गदा जयन्त हो ।

व्याख्याद की दार्शनिक परिभाषा इस प्रकार की जा  
सकती है—

प्रत्यक्षादिप्रमाणाविरुद्धानेकारम्भक

वस्तु-प्रतिपादक श्रुत एक-धारमक व्याख्याद । २

उपमेयिता—वस्तु के वास्तविक तथा व्यावहारिक  
स्वरूप का समझने के लिए व्याख्याद का उपयोग परमावश्यक  
है । व्याख्याद के बिना किसी भी वस्तु का वास्तविक निर्णय  
नहीं हो सकता । यदि हम किसी वस्तु के एक ही धर्म का

१—उक्तानुसन्धी इत्ययमस्ती वस्तु-तत्त्वमितरेण

अस्तीति जयति जती नीतिर्म-मान-नेत्रमिव गोपी १

२— घट महती ।

—पुरुषाय सिद्धिपुषाय

पक्ष में और अन्य धर्मों की ओर ध्यान न दें तो हम निश्चय ही मात्र व्यर्थता में व्यस्त रहेंगे ।

मान सीखिए—हम ध्यान विद्या का विद्या कहते हैं क्योंकि यह हमारा धर्म है । इसमें हम कार्य में नग्न रहते हैं । पर क्या हमारा विद्या सम्पूर्ण मया का विद्या ही बनना है ? कहना होगा नहीं । क्योंकि हमारा विद्या तो हमारी धर्मिता ही है किन्तु दूसरे की धर्मिता में नहीं । हमारी धर्मिता के धर्मिता किसे दूसरे की धर्मिता में यह माना भी है किन्तु तीसरे की धर्मिता में यह भाई तथा पुत्र भी हो सकता है । फिर हम यह कैसे कह सकते हैं, कि— 'यह धर्मिता ही है । ऐसा कहना और मानना भारी भ्रम है । धर्मिता यही धर्मिता है जिसमें हमारे में कसब और धर्मिता का प्रसार होता है । यदि हम ही के धर्मिता पर भा का प्रयोग करना सीख लें, तो कसब एक धर्मिता का धर्मिता ही न रहे । भी का प्रयोग करने हुए हम कहेंगे कि— यह धर्मिता ही है । यही धर्मिता ही है इसी का हम धर्मिता कहेंगे ।

इस सम्बन्ध में धर्मिता ध्यान विद्या विद्या का धर्मिता धर्मिता है कि मानव-जीवन का धर्मिता एक धर्मिता धर्मिता का धर्मिता जीवन में धर्मिता का उपयोग करना



तथा अनिवार्य है। दयनिव, कौटुम्बिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय अधान्त का मूल कारण ही वे अतिरिक्त और मुख्य नहीं हो सकता। इस अधान्त और अधनपन के भाव को मन और मस्तिष्क में स्थान न देना ही स्थानाद है। यदि मानव-समाज धाज स्थानाद की अधपर एक अधान्त-दृष्टि में विचार करना सीखा जाए तो निश्चय ही हम अधन जीवन को सरल सुन्दर तथा अधान्त बना सकते हैं।

---

अनन्तमनस जिनका मन्त्रव्यवस्था का माना गया है और बौद्धिक विनियोग के द्वारा पदार्थों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए जमा उपयोग स्याना का विद्यमान जाता है उतना ही मन्त्रव्यवस्था और उपयोग सप्त-भगी का भी माना गया है। सप्त-भगी एक बड़ा मन्त्र-विद्वान् है जो बस्तु के धर्म पर व्यवस्थित रत्ना है। सप्त-भगीवादी तत्त्ववाद और प्रमाणवाद—ये मन्त्र स्याना की मन्त्र के संरक्षक हैं। स्यानाद रूपों दुःख पर अधिकार करने के लिए यह अनिवाच्य आवश्यक है कि अधिकार की कामना करने वाला सर्वप्रथम इन तीन प्रयोगों पर अपना अधिकार स्थापित कर ले।

अतः किसी प्रश्न के उत्तर में या तो हम ही बोलते हैं या नहीं। इसी ही और नहीं के अर्थों का स्वर सप्त-भगीवादी का रचना हुई है। सप्त-भगी का सामान्य अर्थ है—वचन के साथ प्रकारों का एक संशुद्ध। किसी भी पदार्थ के लिए अज्ञान के महत्त्व को ध्यान में रखने

दृग्मान प्रकार से बचनो का प्रयोग किया जा सकता है ।  
वे सात बचन इस प्रकार हैं—

- १ है
- २ नहीं
- ३ है और न
- ४ कहा नहीं जा सकता
- ५ है, परन्तु कहा नहीं जा सकता
- ६ नहीं है परन्तु कहा नहीं जा सकता
- ७ है और नहा परन्तु कहा नहीं जा सकता

परिभाषा— प्रश्नवगादेवत्र वस्तुनि अविराधेन  
विधि प्रतिषेध कल्पना मप्य भगी ।

अर्थात्—प्रश्न के अनुसार एक ही वस्तु में विरोध रहित  
विधि और प्रतिषेध की कल्पना को सप्त भगी कहते हैं ।  
किसी भी पदार्थ एवं वस्तु के विषय में सात प्रकार के  
प्रश्न ही संभव हैं इसीलिए सप्त भगी कही गई है । मान  
प्रकार के प्रश्ना का कारण है—सात प्रकार की जिज्ञासा  
और सात प्रकार की जिज्ञासा का कारण है—सात प्रकार  
के अज्ञेय तथा सात प्रकार के सत्या का कारण है—उसके  
विषय-रूप वस्तु के धर्मों का सात प्रकार न होना ।

अस्तु इस परिभाषा या लक्षण से यह स्पष्ट हो जाता  
है कि सप्त भगी के सात भग केवल दार्शनिक कल्पना

हो नहा है अपितु वस्तु के धर्म विशेष पर साधित हैं ।  
इसलिए मनु भगो का अध्ययन मनन और चिन्तन करने  
समय हम बात का ध्यान रखना निम्नत आवश्यक है  
कि उसका प्रत्येक भग का स्वल्प वस्तु के धर्म के साथ  
सम्बद्ध हो । यदि किसी भी पदार्थ का कार्य भी धर्म  
निश्चलाया जाना आवश्यक है तो उसी प्रकार दिखना  
साधित त्रिममे कि उन धर्मों का ध्यान उस वस्तु के न  
किपुत्र न हो जाय ।

मान लीजिए आप घट में नित्यत्व का स्वल्प निश्च  
लाना चाहते हैं तो आपका घट के नित्यत्व का बोध कराने  
के लिए कोई ऐसा उपयुक्त शब्द प्रयोग करना होगा जो  
घट में रहने वाला नित्यत्व धर्म का बोध ला सका किन्तु  
अब अनित्यत्व यदि धर्मों का निरापेक्ष करे । यह बात  
मनु भगो के द्वारा ही ही मकना है ।

यथा— स्वाद् नित्य एव घट अथवा स्वाद् अनित्य  
एव घट - अर्थात् घट नित्य भी है और अनित्य भी ।  
द्रव्य दृष्टि में यह नित्य है और पर्याय-दृष्टि में अनित्य ।

अस्तु, अब हमी उत्पत्त्योन्मूल घट पर मनु भगुओं  
की वचन प्रयोग चीना इस प्रकार होगी—

- १ स्वाद् नित्य एव घट
- २ स्वाद् अनित्य एव घट

- ३ स्याद् नित्यानित्य एव घट
- ४ स्याद् अवक्तव्य एव घट
- ५ स्याद् नित्य अवक्तव्य एव घट
- ६ स्याद् अनित्य अवक्तव्य एव घट
- ७ स्याद् नित्यानित्य अवक्तव्य एव घट

किमी भा पदार्थ क विषय म उक्त सात प्रकार म ही प्रश्न हो सकत हैं। अत आठवाँ नवाँ या दशवाँ भङ्ग नहा बा सकता। इसीलिए 'सप्त भङ्गी म सप्त पद विकुन सार्थक एव व्यवधारणा मक् है अर्थात्—सात ही भङ्ग हैं, कम या अधिक नहा। उक्त सात वचन प्रयागो का स्वीकरण इस प्रकार है—

- १ घट, द्रव्य प्रपेक्षा म नित्य है।
- २ घट पर्याय अणु म अनित्य है।
- ३ घट अम विवक्षा म नित्य भी है और अनित्य मा।
- ४ घट अवक्तव्य है, अर्थात्—युगपद् विवक्षा म अवक्तव्य भी है।

उक्त चार वचन प्रयागो पर म पिछले तीन वचन और बनाए जाते हैं। यथा —

- ५ द्रव्य प्रपेक्षा से घट नित्य होने के साथ साथ युगपद् विवक्षा म अवक्तव्य है।

६ पर्याय अगता मे घट अनित्य होन के साथ-साथ दुःखपद विवक्षा न अवलम्ब्य है ।

७ द्रव्य और पर्याय की अगता से घट अमग नित्य और अनित्य होने क साथ साथ दुःखपद विवक्षा से अवलम्ब्य है । पिछले तीन वचन प्रयोग अवलम्ब्य रूप अनुय अग के साथ पहला दूसरा और तीसरा मिलान में बनते हैं । अत वास्तव में मुख्य रूप से तीन ही भङ्ग हैं ।

मम भंगी के विषय में एक अर्थ बात में ध्यान देने योग्य है और वह है—भङ्गा क अम म मन भंग का उत्पन्न होना । कुछ अर्थकार 'अवलम्ब्य का तीसरा और नित्य नित्य की चतुर्थ भङ्ग क रूप में स्वीकार करते हैं । परन्तु अथ आचार्य निःपानित्य की तीसरे और 'अवलम्ब्य' की चतुर्थ भङ्ग क रूप में स्वीकार करते हैं । इस अर्थ भेद में निम्नर और 'वनाम्बर—नाम सम्प्रदाया के आचार्य सम्मिलित हैं । यद्यपि दोनों सम्प्रदाया के आचार्य ने इस प्रकार अथ अथ अथा में भिन्न भिन्न विचार अर्थ का स्थान दिया है परन्तु इस अर्थ भंग में अस्तुम्भितिक म किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं सिद्ध होता है ।

अत ममा का मिदाम्त वृत्त श्रेष्ठ है और पारम्परिक कथन को दूर करने वाला, समस्त अस्तु-स्वप्न का चायक गत प्रयोग है । यदि इस मिदाम्त के

निक व्यवहार में अपना लें ता निश्चय ही हमारा साम्प्रदायिक मोह ममता दूर हो सकती है। जिस भाँति जना ने अहिंसा को सत्रिय रूप दे दिया है उसी भाँति यदि हम 'स्याडाद और 'सप्त भङ्गी को भी अपने जीवन व्यवहार में सत्रिय रूप दे द ता हमारा समाज सुरागन्ति एवं सुरा हो सकता है। हम तक न हो सकेंगे ऐसी कोई असम्भव बात महा है; हाँ एकता के लिए अपनी अपनी लक्ष्य होने मायसाधा और निराधार धारणाओं का परि त्याग अवश्य ही करना होगा।

---

## नय-वाद

दृष्टिकोण—मानव का स्वरूप एवं व्यापक-दृष्टिकोण ही उस सत्य की झार से जाना है। सत्य—विशाल व्यापक, अनन्त और अक्षय्य होना है। परन्तु सामान्यतः मानव का परिमिति ज्ञान उस सम्पूर्ण रूप में जान नहीं पाता। अक्षय्य रूप में अथवा अनेक अर्थों में ही वह वस्तु का परिबोध कर पाता है। सत्य के परिज्ञान के लिए किंवा ज्ञान मार्ग की जीवन के समतल पर उतारने के लिए व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता ही नहीं अनिवार्यता भी है।

व्यक्ति, समष्टि और परमजी—जीवन विकास का यह क्रम पद्धति है। जन-द्वन्द्व की सत्यो मुखी अन्वयान्त दृष्टि, जन-धर्म का सर्व-सहिष्णु अहिंसा सिद्धांत और जैन परम्परा का चिरागत नमो-वाद—य तानो भिन्नकर एव ही कार्य करत है। और वह कार्य यह है कि—व्यक्ति अपनी सु-सीमा में बद्ध न हो जाए समष्टि व्यक्तिक विकास मार्ग में अज्ञान बनकर उसका विकास की अवरोधक



अपिनु एक दूसरे से समझीता करके दाना परमश्री व रूप म परिणत हो जाँँ परम ज्योति बन जाएँ ।

वस्तु-तत्त्व—इम गुभकर एक सर्व हितकर विगान दृष्टिकोण को जोखन म ढालन म पूव वस्तु-तत्त्व व स्वरूप का समझ लना भा आवश्यक है । अनन अवतनमय इस जगत का प्रयक वस्तु मनु है, दाश्यत है और अनन्त है । प्रत्यक वस्तु अनन गुण धर्मों का अखण्ड पिण्ड है । वह कभी ननी रही यह नहा कहा जा सकता । वह कभी नही रहेगी—यह नही कहा जा सकता । वह नही है—यह भी नही कहा जा सकता । कहा यह जाएगा कि— वह था, वह है और वह रहेगी । धृत वर्त्तमान और यतिप्यमाण—इन तीनों वालो म कभी उसका अभाव नहा हगा ।

हाँ तो वस्तु सत् है, तावत है और नित्य है—परन्तु कूटस्थ भित्य नहा परिणामा नित्य है । कदाकि प्रत्यक वस्तु म प्रतिक्षण पूव पर्याय का विगम और उत्तर-पर्याय का उत्पाद हाना रहता है ।

अस्तु द्रव्य दृष्टि मे नित्य है विगम और उत्पाद की दृष्टि म अर्थात्—पर्याय-दृष्टि मे परिणामी प्रतिभाग बदलन घावी भी है । कनक व कगन का तीटकर उसका मुकुट बनवा खाला । दृष्टा क्या ? घाटनि बदल गई



विलपता नय न करना है। जन दान म एक भी सूत्र और अर्थ ऐसा नहीं जो नय शून्य हो। विन्यावश्यक भाष्य म यह तथ्य दस प्रकार है—

‘नत्थि नएहि विदुषः

सुत अर्थो य त्रिण-भाए किञ्चि ।’

जन दाननिका के समक्ष एक बड़ा ही जटिल प्रश्न, साथ ही सम्भार भी था कि—नय क्या है ? नय प्रमाण है अथवा अप्रमाण ? यदि वह प्रमाण है तो प्रमाण म मिश्र क्या ? और यदि वह अप्रमाण है, तो वह मिथ्या ज्ञान होगा। और मिथ्या ज्ञान क निरु विचार-अगत म क्या कहा स्थान होता है ?

इन प्रश्नों का मौलिक समाधान जन दाननिका न बड़ी सम्भोरता और सतकता से किया है। वे अथनी तर्क नीली म कहने हैं—

नय, न तो प्रमाण है, और न अप्रमाण। परन्तु प्रमाण का एक अंग है। सिधु का एक बिन्दु न तो सिधु है और न असिधु—अपितु वह सिधु का एक अंश है। एक मन्तिक का सना नहीं वह सकने परन्तु उस अनेना भी तो नहीं कह सकन, क्योंकि वह मना का एक अंग तो है हा। नय क सम्प्रथ म भा यनो गय है।

प्रमाण का विषय अनेकात्मक वस्तु है और नव का विषय है उस वस्तु का एक अंग ।

यदि नव अनन्त धर्मात्मक वस्तु के किसी एक ही अंग (धर्म) को ग्रहण करना है तो वह मिथ्या ज्ञान ही रहेगा । फिर उसके द्वारा वस्तु का यथाथ बोध कैसे होगा ?

इस प्रश्न का उत्तर भी तीन दार्शनिकों ने अपनी उन्नी मूल्य-मूलक तब-शली पर दिया है—

‘नव अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक अंग को ही ग्रहण करता है यह मूल्य है । परन्तु इतने मात्र न ही वह मिथ्या ज्ञान नहीं हो सकता । एक अंग का ज्ञान यदि वस्तु के अन्य अंशों का निषेधक हो जाए तभी वह मिथ्या होगा । किन्तु जो अंग ज्ञान, अपने से व्यतिरिक्त अंगों का निषेधक न होकर, केवल अपने दृष्टिकोण को ही व्यक्त करता है तो वह मिथ्या ज्ञान नहीं हो सकता ।

हाँ, जो नव अपने स्वीकृत अंग का प्रतिपादन करते हुए यदि अपने से निम्न दृष्टिकोण का निषेध करते हैं तो निस्सन्देह वे नयाभाम’विवा दुनय कह जायेंगे । परस्पर निरपेक्ष नव दुनय <sup>३</sup> और सापेक्ष सुनय है ।

नयों की शख्या—यद्यपि नय अनन्त हैं, कयाकि वस्तु क धम भी अनन्त हैं फिर भी गया के मूल में दो भेद हैं— द्रव्याधिक और पर्यायाधिक । अभेद गामिनीदृष्टि को द्रव्याधिक नय कहते हैं और भेदगामिनीदृष्टि को पर्यायाधिक नय कहते हैं । नयो म नगमाणि तीन द्रव्याधिक हैं, और ऋतुसूत्र आदि चार पर्यायाधिक हैं ।

---

किसी भी वस्तु का पश्चिवाध करना यह एक मात्र धारणा व ज्ञान गुण का कार्य है। इस दृष्टि में ज्ञान ही प्रमाण माना जाता है। जन-दर्शन ज्ञान व अतिरिक्त किसी समय इन्द्रिय आदि जल उपकरणों को प्रमाणत्वेन स्वीकार नहीं करना।

प्रमाण—जिसके द्वारा वस्तु-तत्त्व का सग्यादिव्य वच्छेदेन यथाथ परिक्षेप किया जाता है, वह प्रमाण है।<sup>१</sup>

जो ज्ञान स्वयं अपने आपका और अपने से भिन्न अन्य वस्तुधा का भी सम्यग् रूप में निश्चय करता है, वह ज्ञान प्रमाण कहा जाता है।<sup>२</sup>

१—प्रकर्षेण सग्यादिव्यवच्छेदेन मौघते परि  
द्विद्यते मायत धस्तु-तत्त्व येन तत प्रमाणम् ।

२—स्व पर-व्यवसायि ज्ञान प्रमाणम् ।

—प्रमाण

प्राथम्यं च सम्यक् निर्णय को प्रमाण कहने हैं । १  
अर्थात् जिस ज्ञान में सत्य, विषय और अनध्यवसाय—  
इन तीनों दोषों में से एक भी दोष न हो वह ज्ञान ही  
वस्तुतः प्रमाण है ।

जो ज्ञान स्व-पर का प्रकाशक है तथा  
संशय आदि बाध दोष से रहित है वह प्रमाण है । २

एक आशय न ता बहुत सीधे सीधे शब्दों में प्रमाण  
को सरलतम व्याख्या कर दे है—

सम्यग्ज्ञान अर्थात् यथार्थ ज्ञान ही प्रमाण है । ३  
जो ज्ञान यथार्थ नहीं है वह प्रमाण भी नहीं है ।

उपरोक्त सभी व्याख्याओं में अष्ट भेद तथा शली भेद  
अमर्य है, किन्तु भाव भेद नहीं है । गमा जनाशय सम्यग्  
ज्ञान का प्रमाण मानते हैं । और सम्यग् ज्ञान वही है जो  
स्व-पर का प्रकाशक है । अन-इ-ज्ञान न तो ज्ञान का अर्थ

१—सम्यगर्थ निर्णय प्रमाणम् ।

—प्रमाण मीमांसा १ १ २

२—प्रमाण स्व-पराभासि, ज्ञान बाध विवर्जितम् ।

—न्यायवतार एतत् १

३—सम्यग्ज्ञान प्रमाणम् ।

—याम दीपिका

मानना है, और न ज्ञानात्तज्जय ही । हमक लिए प्राय सभी जत दार्शनिक दीपक का उदाहरण दते हैं । जिन प्रकार प्रखलित दीपक न अप्रकाश्य होता है और न किसी दूसरे दीपक के जरा प्रकाश्य अपि नु यह स्वतः प्रकाशमान है । वह घट-घट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता है और स्वयं अपने आपको भा । इसी प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान भी जिसे प्रमाण कहते हैं स्वपरावभासि माना जाता है ।

प्रमाण के भेद—आगमों में प्राय सषट् प्रमाण शब्द से पञ्चविध ज्ञान का ही ग्रहण किया गया है । परन्तु कहीं कहीं तर्क पद्धति से भी प्रमाण का वर्गीकरण स्वीकृत है । प्रमाण शब्द से यहाँ जिन चार प्रमाणों का समग्रण है वे चार प्रमाण <sup>१</sup> इस प्रकार हैं—

प्रत्यक्ष—अन शब्द का अर्थ—आत्मा भी होता है, और इन्द्रिय भी । इन्द्रियों की सहायता के बिना जो ज्ञान

१—प्रमाणों चतुर्विधे पण्यत तज्जहा पञ्चकले  
अनुमान श्रोत्रमे आगमे ।

—म० सू० शं० ५, उ० ५

पञ्चकले अनुमान श्रोत्रमे, आगमे ।

—अनुशासनार सूत्र प्रमाण शी



सौधा आत्मा से होता है यह प्रत्यक्ष है। इस व्याख्या के अनुसार प्रत्यक्ष के तीन भेद होते हैं—

- १ अवधि ज्ञान ।
- २ मन पर्याय ज्ञान ।
- ३ केवल ज्ञान ।

इन्द्रिया की सहायता से होने वाला ज्ञान भी प्रत्यक्ष होता है। इसको इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं। परन्तु यह व्याख्या सम्यक्वहारदृष्टि की अपेक्षा से है, निश्चय दृष्टि की अपेक्षा से नहीं। निश्चय दृष्टि में तो तीन ज्ञान ही प्रत्यक्ष हैं। सम्यक्वहार की दृष्टि से मान गए इन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष के छह भेद इस प्रकार हैं—

- १ स्पर्शन
- २ रासन
- ३ घ्राण
- ४ श्रावण,
- ५ श्रोत्र,
- ६ मानस ।

अनुमान— साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। १ जल घूम से अग्नि का ज्ञान करना ।

१—साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम् ।

—प्रमाण भीमागा १-२-७

उपमान—जिम्हें द्वारा साहित्य के आधार पर उभय पदार्थों का ज्ञान होता है, वह उपमान प्रमाण है। जैसे गवय गाय के सदृश होना है।

प्रागम—प्राप्त वचन के द्वारा होने वाले अथवा प्राप्त प्रागम प्रमाण कहा जाता है। अथवा प्राप्त पुरुष के वाक्य को भी उपचार से प्रागम कहा जा सकता है।<sup>१</sup>

नन्दी सूत्र में पञ्चविध ज्ञान के दो विभाग किए हैं—  
प्रत्यक्ष और परोक्ष।

प्रत्यक्ष के दो भेद—इन्द्रिय प्रत्यक्ष और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष के पाँच भेद और नो इन्द्रिय प्रत्यक्ष के तीन भेद किए हैं।

परोक्ष के दो भेद—प्राग्निवाचिक ज्ञान और श्रुत ज्ञान।

इस प्रकार प्रागमों में प्रमाण अर्थात् ज्ञान का अन्वय गलियों से निरूपण किया गया है।

दागनिव पद्धति—प्रागमोत्तर साहित्य में सब प्रथम सत्त्वाथ-सूत्र आता है उसमें भी परिष्कृत रूप में प्रागम

१—प्राप्त-वचनादावि भू समथसवेदनप्रागम

—प्रमाणनय, सत्त्वालोच, ४-३

उपचारादाप्त वचन च

पद्धति को मुख्य रूपपर प्रमाण का विगद विवेचन किया गया है ।

तत्त्वार्थ सूत्र में पच विध ज्ञान का दो प्रमाणों में विभक्त किया गया है—परोक्ष और प्रत्यक्ष रूप में ।<sup>१</sup>

परोक्ष में मति ज्ञान और श्रुत ज्ञान तथा प्रत्यक्ष में अवधि, मन पर्याय और बबल ज्ञान का समावेश किया गया है । इस प्रकार पंच ज्ञान दो प्रमाणों में समा जाने हैं ।

१—तत्प्रमाणे १-१०

आद्य परोक्षम्, १-११

प्रत्यक्ष मन्यत्, १-१२

—तत्त्वाद्य सूत्र

## प्रमाण का विषय

प्रमाण ज्ञान है। जो ज्ञान है, वह विषयी हावा है। प्रमाण का विषय क्या है? जन-द्वयन के अनुसार प्रमाण का विषय है— द्रव्य एव पर्याय न युक्त वस्तु।<sup>१</sup>

प्रत्येक वस्तु उत्पाद ध्यय और प्रोच्य से युक्त है।<sup>२</sup> वस्तु पण्य तथा द्रव्य—य सभी पर्याय-वाचक शब्द हैं। प्रत्येक वस्तु न उत्पाद और ध्यय की धारा प्रनिक्षण प्रवाहित होती रहती है। नवीन पर्याय का उत्पाद तथा खतमान पर्याय का ध्यय सदा होता ही रहता है। फिर भी प्रत्येक वस्तु द्रव्य-रूप न स्थिर है। जैसे कुण्डल का कटक और कटक का हार। ये सभी रसांतर हत हुए भी कुण्डल

१—प्रमाणरय विषयो द्रव्य-पर्यायात्मक वस्तु

—प्रमाण-मीमांसा, १-१-३१

२—उत्पाद-ध्यय प्रोच्य युक्त सत्

—सर्वार्थ सूत्र १ २६

कटक और हार में सुवर्गात्वं अनुष्ण है । जैन-दशान में प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय की दृष्टि से अनिय है तथा द्रव्य दृष्टि से नित्य है ।

द्रव्य—द्रव्य की व्युत्पत्ति यह है कि— द्रवति तान् तान् पर्यायान् गच्छति इति द्रव्यम् । धर्यान् जो प्रतिक्षण नये-नय पर्यायों की प्राप्ति करता रहता है वह द्रव्य है ।

गुण एवं पर्यायों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं ।<sup>१</sup> गुण और पर्याय साधेय हैं तथा द्रव्य उनका साधार है ।

प्रत्येक द्रव्य अपने मूल रूप में शाश्वत है, परन्तु उत्पाद-व्यय रूप से परिणामी भी है । अतः जिन नामों में प्रत्येक द्रव्य परिणामी नित्य है । द्रव्य के छह भेद हैं—

- १ धम
- २ अधर्म
- ३ आकाश
- ४ काल
- ५ जीव,
- ६ पुद्गल ।<sup>२</sup>

१—गुण-पर्यायवद् द्रव्यम् —तत्त्वाय सूत्र, १-३७

२—धम्मो अहम्मो आकाश  
कालो पुद्गल-जतवो ।

गुण— जो सदा द्रव्य में रहते हैं और जो स्वयं गुण रहित हैं वे गुण हैं । १

यद्यपि पर्याय भी द्रव्य का आश्रित है और निगुण है, तथापि वे उत्पादक्यय नीचे होने से द्रव्य में सदा नहीं रहते । परन्तु गुण तो नित्य होने से सदा द्रव्याश्रित ही हैं । गुण और पर्याय में यही मौलिक अन्तर है ।

वस्तु का जो सहभावी घट्ट है वह गुण होता है । २  
जैसे धाभा एक द्रव्य है यन्तु है और गान एक गुण है । गान-गुण सदा काल आत्मा में रहता है । एक भी क्षण एसा नहीं है जिस समय आत्मा में गान-गुण न रहता हो । गान, दान आदि गुण आत्मा के शाश्वत घट्ट हैं ।

पर्याय—द्रव्य और गुण का जो प्रत्येक अवस्थाएँ उत्पन्न और नष्ट होता रहता है वे पर्याय हैं । ३

१—द्रव्याश्रया निगुणा गुणा

—तत्त्वाय सूत्र ५-४०

२—गुण सहभावी घट्टौ यथाऽऽत्मनि विज्ञाने ।

—प्रमाण-नय तत्त्वालय, ५ ७

३—तद भाव परिणाम

—तत्त्वाय सूत्र ५-४१

घट द्रव्य। म एक भी ऐसा द्रव्य नहीं है, जिसके पर्याय न हों। गुण। म एक भी ऐसा गुण नहीं है जिसके पर्याय न हों। इसलिए पर्याय के दो भेद हो जाते हैं। जसे—

१—द्रव्य पर्याय,

२—गुण-पर्याय।

पर्याय सत्त्व क्रम भावी होता है। <sup>१</sup> क्योंकि वह उत्पान-व्यय शील होता है। जसे—आत्मा द्रव्य है, और मुख दुःख हर्ष तथा विषाद क्रमके पर्याय हैं। क्योंकि हर्ष और विषाद आदि अवस्थाएँ आत्मा में सदा काल नहीं रहती हैं। जब हर्ष होता है तब विषाद नहीं होता है और जब विषाद होता है तब हर्ष नहीं होता है। अतः क्रम भावी होने से ये सब पर्याय हैं।

१—पर्यायस्तु क्रमभावी यथा तत्रैव मुख-दुःखादि।

—प्रमाण-नय तत्त्वालोक, ५-८

एक-दूमेर के विचारों व धादान प्रदान का मुख्य साधन माया है। माया शब्द से बनती है। एक ही गन् प्रसंग वगैरे अथवा प्रयोजनवगैरे अनेक अर्थों को अभिव्यक्त करता है। प्रत्येक शब्द के कम से कम चार अर्थ तो अवश्य ही होते हैं। इस अर्थ विभाग का ही गाल्सीय परिभाषा में निक्षेप कहते हैं।

निक्षेप का अर्थ है—रक्षणा आरोप करना।<sup>१</sup> निक्षेप न्याय दोनों पर्याय-वाचक गन् है।<sup>२</sup>

प्रतिपाद्य वस्तु का स्वरूप समझाने के लिए नाम स्थापना आदि भेदा द्वारा वस्तु का विवेचन करना निक्षेप है।

१—न्यस्तन न्यमता इति वा न्यासो निक्षेपः

—राजवाङ्मिह

२—न्यासो निक्षेपः

—तत्त्वार्थ



वस्तु तत्त्व का स्पष्ट निरूपण करना यही तो निशेष का मुख्य प्रयोजन है ।

नय और निशेष का अंतर

प्रश्न—नय और निशेष में क्या अंतर है ?

उत्तर—नय ज्ञानात्मक है, उसने ज्ञान वस्तु का ज्ञान होता है । इसका प्रयोजन कि भाव उसका विषय विषयी भाव सम्बन्ध है ।

शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है । इस वाच्य वाचक सम्बन्ध का स्थापन की क्रिया ही निशेष है । यह वाच्य वाचक सम्बन्ध और उसकी क्रिया नय में जानी जाती है । अतः निशेष भी नय का विषय है । मार यह है कि नय और निशेष में विषय विषयी भाव है । निशेष विषय है और नय विषयी है ।

निशेषों में नय-योजना

नाम स्थापना और द्रव्य—एक ताना में किसी न किसी प्रकार का अशुभ रहने से ये तीन द्रव्यास्तिक नय के विषय हैं । भाव निशेष में अशुभ रहने से वह पर्यायास्तिक नय का विषय है ।<sup>१</sup>

१—नाम उच्यते दद्विष्टि, एत द्रव्यद्विष्टयस्त निशेषो ।

भाषो उ पञ्जयद्विष्टयस्त पर्ययना एत परमत्यो ॥

### निम्नों के भेद

१ नाम—लोक-व्यवहार के लिए किसी दूसरे गुण या शक्ति निमित्त की अपेक्षा न रखकर किसी पदार्थ की बोध मत्ता रखना नाम निम्न है ।

यथा—किसी बालक का नाम महाबोर रखना । कुछ नाम गुण के अनुसार भी हो सकते हैं । परन्तु नाम निम्न गुण की अपेक्षा नहीं करता ।

२ स्थापना—प्रतिपाद्य वस्तु के सत्त्व अथवा विसर्जन कारण वाला वस्तु में प्रतिपाद्य वस्तु की स्थापना करना । यह स्थापना निम्न है ।

यथा—जम्बू दीप के चित्र को जम्बू द्वीप कहना । गलरज के पागो का हाथी घंटा वजीर और वादगाह शक्ति के नाम से कहना ।

३ द्रव्य—किसी पदार्थ की भूत और अविद्यमान कालिक पर्याय के नाम का वर्तमान काल में व्यवहार करना । यह द्रव्य निम्न है ।

यथा—जो भूत काल में राजा था । परन्तु अब नहीं है । उसे वर्तमान में राजा कहना और जो वर्तमान में ही युवराज ही है परन्तु उसे वर्तमान में ही राजा कहना ।

४ भाव—वर्तमान पर्याय के अनुसार वस्तु में उस भाव का प्रयोग करना । यह

यथा—राज्य करते हुए को राजा कहना । पूजा करते हुए को पुजारी कहना । सेवा करते हुए को सेवक कहना । प्रयोजन

जिस प्रकार प्रमाण और तब से वस्तु का परिज्ञान होता है उसी प्रकार निशप भी प्रतिपाद्य वस्तु के स्वरूप को समझने का एक साधन है । निशपा में विभक्त वस्तु स्पष्टतर हो जाती है । यही कारण है कि शास्त्रकारों ने प्रमाण और तब के बाद निशपा का भी विन्द वगणन किया है । यहाँ पर केवल दिशा-दशन मात्र ही किया गया है ।

---

# उपसंहार

ग्रन्थ हुआ सम्पूरा, नि-तु कुछ,  
फिर भी कहना बाकी है ।  
यह परिशिष्ट चूनिवा इमम,  
शिष्ट सत्य की भासी है ॥

## अनेकान्त के व्याख्याकार

भारतीय दान के विनाश-क्षत्र में एक बार घृण्य बानी बौद्ध और विज्ञानवादी बौद्ध अपने अपने तर्कों से अपने सिद्धांतों की पुष्टि करने में मग्न थे और झुगरी और कमकाण्डी भोमांसक ज्ञानवादी वेदान्ती और तन्वादी न्यायिक अपने-अपने उपनियम एवं वेदान्त के सिद्धान्तों की तर्क से जन मानस में जड़ जमा रहे थे। बौद्ध दान एकान्त क्षणिकवाद का और वेदान्त दान एकान्त नित्यवाद का प्रबल प्रचार कर रहा था। उस समय का भारत विचारमण्डल का भसाड़ा बना हुआ था। अपने अभीष्ट मन की पुष्टि के लिए साक्ष्यार्थ लिए जाने थे। बौद्ध दान निक बल्कि परम्परा पर बटोर प्रहार करते थे, तो इधर बौद्धिक दार्शनिक भी बौद्ध विचार धारा पर निमग्न होकर प्रहार करते थे। विद्या न विज्ञान का रूप ल लिया था और विचार बुद्धि का विलास बन रहा था। सत्य क्या है ? इसके अनुसंधान की चिन्ता नहीं थी। चिन्ता थी,

वेचल अपनी मान्यता का सत्य सिद्ध कर देने की। यह कार्य सत्र से होता तो तर्क से अथवा मात्र सत्र एवं यत्र का प्रयोग करते थे। उनके सामने एक मात्र लक्ष्य था—अपने विरोधी को हुरान का।

जैन परम्परा के आचार्यों से भारत का यह बौद्धिक और नैतिक पतन उभा नहीं गया। ये लोग विद्या की स्थापना तो करते थे, पर विद्या में पढ़ना पसन्द नहीं करते थे। सत्य के अनुसंधान से तो इनको रस था, पर अपनी मान्यता को ही सत्य सिद्ध करने की भावना इन लोगों में थी। जो सत्य है उसे स्वीकार करो और जो असत्य है उसका परिहार करो—भले ही यह अपना ही क्या न हो? जय और पराजय में उनकी अभिरुचि नहीं थी। हाँ सत्य को स्वीकार करने में वे कभी प्रमाद नहीं करते थे क्योंकि भगवान् महावीर से उन्हें अनेकान्त दृष्टि मिल चुकी थी फिर वे एकांत की ओर क्या भुक्त? एकान्तवाद में उनका मन कैसे रमता? अतः अनेकान्तमयो दृष्टि लेकर ये लोग विभिन्न विचारों का समन्वय करने के लिए दास निरुद्ध मध पर आए। दोनों पक्षा के सत्य धर्म की उद्दिष्टि प्रशंसा की, और अगम्य अज्ञ को मानने से इंकार कर लिया। जैन परम्परा के आचार्यों ने स्पष्ट घोषणा की—

भगवान् महावीर के प्रति हमारा राग नहीं है और

कविल आदि के प्रति हमारे मन म दृष्ट नहीं है क्यकि  
भगवान् न हम मनेरान्तमयी दृष्टि दी है । मनेरान्त की  
बसौटा पर जो खरा है, जो सत्य है वह सब हम स्वीकार  
है—मन ही वह धपना हा या पराया हा ?

साधार्य सिद्धसेन—भगवान् महावीर म प्राप्त मन  
कान्त, ख्याण्ट एव नयबाद का आधार लेकर साधार्य  
सिद्धसेन ने विभिन्न विचारों का समन्वय किया । धपन  
समन्वयमक विचारों की धर्मियत्ति व लिए सिद्धसेन ने  
शाक्य भाषा म समति तक धप की और गुरुकुल म  
न्यायावतार एव धनेर दार्शनिक-निश्चिवासा की  
रचना की ।

समति तक म नयबाद का बहुत हा विलक्षण धर्मो  
म प्रतिपादन किया गया है । इसम तीन काण्ड हैं । प्रथम  
काण्ड म धप दृष्टि और पर्याय-दृष्टि पर महत्त्वपूर्ण विचा  
रणा है । न्तीय काण्ड म ज्ञान और धपन पर बड़ी  
लम्बी खर्चा की है । तृतीय काण्ड म शुण और पर्याय पर  
धप्या विचार किया है । न्यायावतार म प्रमाण, प्रमेय  
एव धनेर म नय पर भी विचार किया गया है । परन्तु  
इसका मुख्य विषय प्रमाण है । दार्शनिकार्थों म विभिन्न  
दार्शनिक विषयों पर चिन्तन और मनर किया



जैन परंपरा में और जैन-धर्म के इतिहास में विन्ध्य ही आचार्य मिद्धन्त ने गया युग स्थापित किया है, जिसका हम अनेकान्त-युग भी कह सकते हैं।

आचार्य समत भद्र—जैन दार्शनिकों में आचार्य समत भद्र का स्थान भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है। स्यादान्त का मिद्धन्त के लिए समत भद्र ने बड़ा ही गौरवमय काम किया है। अनेकान्त दृष्टि का मथन बड़ी गम्भीरता से संचालित किया है।

आचार्य समत भद्र स्यादान्त का प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर शैली में करते हैं। अन्य दार्शनिकों की एकान्त-दृष्टि लिखा कर अनेकान्त में उनका समावेश कर देना आचार्य की शैली की विलक्षणता है। इन्होंने अनेक दार्शनिक कृतियों की रचना की है जिनमें स्वयम्भूतनीय, सुवरयणुनासन और अज्ञानमोक्षान्त मुख्य हैं।

आचार्य हरिभद्र—हरिभद्र अपने युग के एक महान् दार्शनिक विद्वान् थे। इनकी कृतियों में सण्डन की अपेक्षा रामायण अधिक होता है। यद्यपि पर सण्डन आवश्यक भाँसा ही बहुत ही कोमल भाषा में। हरिभद्र ने बहुत से विषयों पर लिखा है—आयतन, योग, धर्म और कथाएँ। अनेक भाषाओं में लिखा है—संस्कृत में एक प्राकृत में

परन्तु इनका मुख्य विषय था—अनेकान्त स्यात्वाद । अनेकान्त पर 'अनेकान्तवात् प्रवृत्ता एव अनेकान्त जय पताका इनके प्रतिष्ठित ग्रन्थ हैं जिन में अनेकान्त का बहुत सर्व-सूत्र प्रतिपादन किया है । गान्धर्वार्त्ता समुच्चय और पट दशनममुच्चय हरिभद्र का मरुन्धय भावना क सुन्दर और चिरम्बरगीय प्रतीक है । विभिन्न विचारों में समन्वय की यात्रा करना—हरिभद्र की विधि देन है ।

आचार्य अक्षय—अक्षय न मुख्य रूप में प्रमाण गान्धर्व पर अनेक स्वतंत्र ग्रन्थों की रचना की है । उनमें मुख्य ग्रन्थ इस प्रकार है— प्रमाण-मशह लघोपलक्षणी और यात्रा विनिश्चय ।

परन्तु प्रमाण पर चिन्तन करते हुए भी अक्षय अनेकान्त दृष्टि का ही प्रयास देन है । आत्त-मीमांसा की अग्रगती टीका में और सिद्धिविनिश्चय में अक्षय ने अनेकान्त का सुलकर प्रतिपादन किया है । नक को नदी घाटी में उपस्थित करने में वे बड़े मिट्ट-हस्त हैं । अनेकान्त दृष्टि को नक अक्षय ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है । बुद्ध भी कहन और लिखत—वे अनेकान्त को नहीं भूलते ।

उपाध्याय यशोविरय—जन परम्परा के विज्ञान में यशोविरय का विशिष्ट स्थान है । इन्होंने जन दान को नदी भाषा और नदी शब्दों प्रदान की । सुप्रधान स्यात्वाद,

सप्त भगी और नयवाद पर बहुत बड़े परिमाण में अनेक ग्रन्थों की यशोविजय ने रचना की है। उक्त विषयों के अतिरिक्त प्रमाण, विशेष आगम स्तोत्र, योग और अध्यात्म पर आपने सख्या बद्ध ग्रन्थ आज भी विद्यमान हैं और वे बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत प्राकृत, गुजराती और हिन्दी मारवाठी—इन चार भाषाओं में गद्य और पद्य में अनेक ग्रन्थों का गुम्पन किया है।

जैन सर्व भाषा नम रहस्य, नयोपदेश आदि ग्रन्थों में शोकांत दृष्टि का प्रसार बहुत सुन्दर हुआ है। यशोविजय अपने युग के एक प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् थे। नयवाद पर अनेक ग्रन्थों की रचना करके आप ने अनेकान्त और स्याद्वाद की सुन्दर व्याख्या की है। गम्भीर विषय को नव्य भाषा की शैली में व्यक्त करना—आपकी विशिष्ट देन है जिसको इतिहास भुला नहीं सकता।

इस प्रकार ग्रन्थ भी बहुत से जैन दार्शनिक हैं जिनका परिचय यहाँ पर नहीं दिया गया है—उन्होंने भी अपने अपने युग में अनेकान्त स्याद्वाद सप्त भगी और नयवाद पर गम्भीर विचार खर्चा की है सुन्दर व्याख्या की है और अनेक ग्रन्थों की रचना की है। परन्तु सक्षेपदृष्टि हान में उनका परिचय यहाँ नहीं दिया जा रहा है फिर भी उनकी उक्त-नीचा को भुलाया नहीं जा सकता।

अनेकान्त और स्वानन्द के व्याख्याकारों में सिद्धसेन, समन्त भद्र हरिमद्र भक्तक और यशोविजय न जो एक विनिष्ट देन दी है वह आज भी गौरव एवं सकार के योग्य है। अनेकान्तवादी के ये मुख्य व्याख्याकार हैं। इन्होंने एकांत क्षणिकवाद का और एकान्त नित्यवाद का सुन्दर समन्वय किया है। अनेकान्त के व्याख्याकारों ने जिस समन्वय परम्परा का प्रारम्भ किया था— वह समार के लिए सुखद हितकर और मंगलमयी सिद्ध हुई है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

अनेकान्त वाद यदि सकल निर्वाह कुशल,  
मतानि स्पष्टत नय-लव समुत्थानि बहुधा ।  
तदा वि नो भावी बहुल कलि-वातूहल वशाद्,  
घटाऽऽ निर्मातुरिन्नभुधन विधातुश्च कलह ॥

—अनेकात् श्ववस्था

## अनेकान्त विषयक साहित्य

जैन परम्परा में अनेकान्तविषयक साहित्य विपुल माया में और विनाश परिमाण में उपलब्ध है। भाषा की दृष्टि में यह साहित्य मूलतः प्राकृत, कन्नड, हिन्दी, गुजराती और मराठा आदि अनेक भाषाओं में लिखा गया है। परन्तु उक्त विषय का अधिकतम भाग संस्कृत भाषा में ही लिखा गया है।

अनेकान्त विषयक सम्पूर्ण साहित्य का परिचय जो यहाँ पर नहीं दिया जा सकता। सत्य में ही यहाँ पर कुछ परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

आगमाँ अनेकान्त-दृष्टि स्यात्, सप्तमगा और नववाद का विचार यत्र-तत्र विद्यते वद है। सप्तमगो का उल्लेख तो नहीं है परन्तु तीस मगा का उल्लेख भगवता सूत्र में स्पष्ट रूप में है। आगमगत मूल विचारों को लेकर ही अनेकान्त, स्यात् सप्तमगा और

दिया । यहाँ पर सक्षप म उक्त विंगल साहिय सागर व कतिपय अल कणा का ही परिचय दिया जा रहा है, जिससे उक्त विषय की विपुनता और विंगलता का अनुमान लगाया जा सके ।

ग्रथ	लेखक	समय
१ सूत्रवृत्तांग सूत्र		
२ भगवती सूत्र		
३ अनुयोग द्वार सूत्र		
४ स्थानांग सूत्र		
५ समवायांग सूत्र		
६ म मनि तर्क	सिद्धगेन दियाकर	वि० २-३ वीं शती
७ यायावतार	,	वि० ५-६ वीं
८ नय चर	मदलवांग	
९ अनेकान्त जय पताका	हरिभद्र	वि० ७-८ वा
१० अनेकात्मवाद प्रवेश		
११ अनेकात्म प्रघट		
१२ त्रिभगी सार	,	
१३ स्थानाद बुधेय परिहार	,	
१४ सामति टीका	अभय दब	वि० ११ वीं
१५ स्थानाद रत्नाकर	वादिनेष गूरि	वि० १२ वीं
१६ स्थानाद भजरी	मल्लिषेण	वि० १४ वीं
१७ स्थानाद कतिवा	राज गयर	वि० ११ वीं

क्र.सं.	ग्रंथ	लेखक	समय
१८	स्यानाद माना	सुभ विजय	वि० १७ वी
१९	नय कर्णिका	विजय विजय	वि० १७ वी
२०	अनेकान्त व्यवस्था	योगी विजय	वि० १८ वी
२१	जन लक्ष भाषा		—
२२	नय प्रतीप		—
२३	नयोपदेन		—
२४	नय रहस्य		—
२५	अनेकान्त प्रवेश		—
२६	स्यानात् मुक्तावली	याम्बत भागर	वि० १८ वी
२७	आन्त-मीमांसा	गमन्त भद्र	वि० ४-५ वी
२८	धुवधनुशासन		—
२९	स्वयम्भू स्तोत्र		—
३०	याय विनिश्चय	अनन्त देव	वि० ७ वी
३१	मिद्धि विनिश्चय		—
३२	अज्ञाता		—
३३	स्यानाद मिद्धि	धानीम सिंह	वि० ८ वी
३४	अष्टसहस्री	विद्या नन्दि	वि ९ वी
३५	नय चक्र	देव मेन	वि० १९०
३६	आलाप पद्धति		—
३७	स्यानापोपनिषत्	माम् देव	वि० ११ वी



क्र.सं.	सम्बन्ध	समय
३८	सप्त भगिनीरुपिनी विभक्तिका	—
३९	सप्त भगी	—
४०	नय-सायह	—
४१	नयगक्षणा	—
४२	नयवाच	मुनि फुगचञ्च जी श्रमण वतमान म

## दीप परिहार

भारतीय और पाश्चात्य कुछ विद्वान् अनेकान्त पर यह शोध करते हैं कि अनेकान्तवाद और स्याद्वाद स्थिर सिद्धान्त नहीं है क्योंकि उस में कुछ श्रद्धा से लीया गया है। और कुछ अर्थ से लीया गया है और फिर उस जोड़ कर अनेक विद्वान् नए नया सिद्धान्त खड़ा कर लिया। वस्तुतः वह कोई स्वतंत्र सिद्धान्त नहीं है। इस प्रकार के अनेकान्त सिद्धान्त से वस्तु-तत्त्व के स्वरूप का निगम होना तो दूर रहा बल्कि उसके विषय में भ्रम होने लगता है। अनेक विद्वान् ने बौद्ध-मत से अनेकान्तवाद से लीया तथा मास्पर गव वेदान्त से अनेकान्तवाद से लीया। अनेक विद्वान् ने दोनों को मिलाकर यह सिद्ध किया कि वस्तु-तत्त्व अनेकान्त भी है और अनित्य भी है।

जिन विद्वान् ने अनेक ही के भारतीय हैं या पाश्चात्य—  
अनेकान्तवाद एवं स्याद्वाद सिद्धान्त के अन्वय नहीं  
किया। उन्होंने उक्त सिद्धान्तों को भी नहीं  
किया। यदि

विचार किया होता तो वं लाग कभी भी इस प्रकार का आक्षेप नहीं करते । जैन दर्शन का महान् सिद्धान्त अनेकान्त एक स्याद्वाद निश्चय ही दार्शनिक जगत का एक सार्वभौम एक सत्यभूत सिद्धांत है । यह विभिन्न विचारों की मितन भूमि है । यह विभिन्न विचार-परम्पराओं का समन्वय स्थल है । अनेकान्तवाद का यह अद्वैत सिद्धांत है कि विश्व को प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है । उस अनन्त धर्मात्मक वस्तु में ने किसी एक धर्म का उन्नत कर देना और दूसरे का निषेध करना—यह एकांतवाद है इस एकांतवाद का उत्तर ही अस्तुत अनेकान्तवाद है । जैन-दर्शन जहाँ सम्पूर्ण सत्य को प्रकट करता है वहीं अन्य दर्शन सत्य के एक धर्म का प्रकट करते हैं । वे सत्य के एक धर्म का प्रकट करते हैं इसमें तो कोई बुराई नहीं, लेकिन बुराई इतनी है, कि वे सत्य के एक धर्म का सम्पूर्ण सत्य मान बैठते हैं । स्याद्वाद इस मनमाने आग्रह का ही विरोध करता है । अतः अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद उपाय विरुद्ध सिद्धान्त नहीं बल्कि मौलिक एक धर्मानुसृत सिद्धांत है जो वस्तुसत्त्व का यथाथ रूप से प्रतिपादन करते हैं ।

## अनेकान्त दृष्टि के मूल तत्त्व

जब समस्त जन विचार और आचार की नींव अनन्यान्त दृष्टि ही है तब पहचान यह देखना चाहिए कि अनेकान्त दृष्टि किन तत्त्वों के आचार पर लडा की गई है ? विचार करने और अनन्यान्त दृष्टि के साहित्य का अवलोकन करने में मान्य होना है कि अनन्यान्त-दृष्टि सत्य पर लडा है । यद्यपि सभी महात्पुरुष सत्य को पसन्द करते हैं और सत्य की ही खोज तथा सत्य के ही निष्पत्ति में अपना जीवन व्यतीत करते हैं तथापि सत्य विष्णु परम की पद्धति और सत्य की आज सत्य का एक-सा नहीं होती । बुद्ध तिरा शरीर त सत्य का निष्पत्ति करत हैं या गकराचार्य उपनिषद् के आचार पर जिस ढंग से सत्य का प्रकाशन करत हैं उससे भगवान् महावीर की सत्य प्रकाशन की शरीर भिन्न है । भगवान् महावीर की सत्य प्रकाशन शरीर का ही दूसरा नाम 'अनेकान्तवाद' है । उसका मूल मूल तत्त्व है—पूणता, और यथायथा । जो पूण है

श्रीर पूर्ण होकर भी यथाय रूप म प्रतीत होता है, वही सत्य कहलाता है ।

अनेकान्त-दृष्टि का प्रभाव—जब दूसरे विद्वानों ने अनेकान्त दृष्टि को सत्य रूप में ग्रहण करने की जगह साम्प्रदायिकवाद के रूप में ग्रहण किया तब उसके ऊपर चारों ओर से आपत्तियों के प्रहार होने लगे । चान्द्रायण जने सूत्रकारों ने उसके सङ्गत के लिए सूत्र रच दिये और उन सूत्रों के माध्यमों से उसी विषय में अपने भाष्यों की रचनाएँ की । बसुद्ध ध्रु, दिग्नाथ धर्मकीर्ति और शान्तरक्षित तब बड़े-बड़े प्रतिभाशाली बौद्ध विद्वानों ने भी अनेकान्तवाद की आलोचना की । इधर से जैन विद्वानों ने भी उनका सामना किया । इस प्रसङ्ग में यद्यपि अनेकान्त परिणाम यह था कि एक ओर से अनेकान्त दृष्टि का एकबद्ध विकास हुआ और दूसरी ओर से उसका प्रभाव हमारे विरोधी साम्प्रदायिक विद्वानों पर भी पड़ा । दक्षिण भारत में दिगम्बराचार्यों और प्रकाण्ड मीमांसक तथा बदायणी विद्वानों के बीच शान्त्राय की कृती हुई, उससे अनेकान्त-दृष्टि का ही प्रभाव अधिक पला । यहाँ तथा तब कि रामानुज जैसे जनता विरोधी प्रखर आचार्य ने शङ्कराचार्य के मायावाद के विरुद्ध अपना मत स्थापित करने समय आश्रय तो रामानुज उपनिषद् का

ज्ञिया पर उनमें से विशिष्टाईत का निष्पत्त करके सम्य अनेकान्त-दृष्टि का उपयोग किया, अथवा या कहिए कि समानुभव न अथवा दृग से अनेकान्त-दृष्टि का विनिश्चयत का घटना में परिणत किया और औपनिषद् तत्त्व का जामा पहनाकर अनेकान्त-दृष्टि में से विशिष्टाईतवाण खडा करने अनेकान्त दृष्टि की और आकृति अमता को बदान्त मार्ग पर स्थिर रखा । पृथि-भाग के पुरस्कर्ता बनने जा दण्डिण भारत में हुए उनका सुद्धाईत-त्रिपयक सब तत्त्व हैं ता औपनिषदिन पर उनकी सारा विचारमरणी अनेकान्त दृष्टि का नया वैशन्तीय प्रारूप है । इसपर उत्तर और पश्चिम भारत में जा दूसरे विगना के साथ ऐशान्दरीय महान् विगना का सण्टन मण्डन विषयक इन्द्र हूया उमा पल स्वल्प अनेकान्तवाण का अमर जनता में फैला और साम्प्रदायिक दृग से अनेकान्तवाण का विरोध करने वाले भी जानते अमजानत अनेकान्त-दृष्टि का अथनाने लगे । इस तरह वाण रूप में अनेकान्त-दृष्टि आज तक जनता की ही बनी हुई है तथापि उसका प्रभाव किसी न किसी रूप में अहिया की तरह समस्त भारत वर्ष के हर एन भाग में पला हुआ है । इसका प्रमाण सब भागी के साहित्य से मिल सकता है ।

जीवित अन्याय—इतनी सामान्य भूमिका व बाद अब हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं। अन्याय यह जन धर्म का मुख्य सिद्धान्त है जो सत्त्व-ज्ञान और धर्म दोनों प्रत्याभवा समान रूप से मांगता हुआ है। अन्याय और त्याग य दोनों एक ही आभा सामान्य रीति से एक ही धर्म में व्यवहृत होते हैं। केवल ही नहीं, परन्तु अनंतर बुद्धिमान लोग भी अन्याय व जो सम्प्रदाय को अन्याय दशा या अन्याय सम्प्रदाय के नाम से पहचानते तथा पहचान कराने हैं। चिरकाल से जन अपनी आनन्द सम्बन्धी मायता को एक स्वाभिमान की वस्तु दखन आए हैं, और इसकी बन्धता उदारता तथा मुदरता का स्थापना करने आगे हैं। यहाँ हम यह देखना है कि अन्याय है क्या वस्तु? और उसकी जीवितता क्या है? तथा यह जीवित आनन्द अपनी जन परम्परा में सामुदायिक दृष्टि से क्या बनी था और क्या अभी है?

वस्तुतः अन्याय यह एक प्रकार का विचार-गठित है। यह सब निम्नानुसार—सब और से सुना एक मानस वस्तु है। ज्ञान के विचार व और आचरण के—किसी भी विषय को यह क्या सही-दृष्टि में दखन के लिए नियत करता है और अधिक व अधिक उदारता में अधिक से अधिक दृष्टि-रक्षण से और अधिक व

अधिक भाषिक रीति में—वह सब कुछ विचारन और  
 आचरण करने का पक्षपात रखता है। उनका यह कल्पना  
 की बंधन ए य पर ही आश्रित है। अनेकान्त की जीवितता  
 का अर्थ है—उमक आगे-पीछे और भीतर सबत्र सत्य का  
 समर्थन का प्रवाह। अनेकान्त यह बवल कल्पना नहीं है  
 परन्तु सत्य सिद्ध कल्पना के होने में तत्त्व जान है और  
 विवेक युक्त आचरण का विषय जान से यह घम भी है।  
 अनेकान्त का जीवन इसमें है कि वह जम दूसरे विषया को  
 सब आर से तटस्थ रूप से देखने विचारन और अपनाने के  
 लिए प्ररित करता है उसी प्रकार वह अपने स्वरूप और  
 जीवन के विषय में भी मुक्तमन से ही विचार करने के  
 लिए तयार रहता है। विचारों की निरन्तर स्पष्टता और  
 तटस्थता अपिब हानी है उतनी ही मात्रा में अनेकान्त  
 का जल या जीवन विनाद एव विनाश होता है।



न समुद्रो-ममुद्रो वा,  
समुद्राशो यथोच्यते ।

नाप्रमाणं प्रमाणं वा,  
प्रमाणाशस्तथा नय ॥

—नयोपदेश

सम्यक् श्रुतस्य मिथ्यात्व,  
मिथ्यादृष्टि परिग्रहात् ।

मिथ्या श्रुतस्य सम्यक्त्व,  
सम्यग्दृष्टि परिग्रहात् ॥

—नयोपदेश

## लोकमत

‘जब से मैंने राजराजाय द्वारा जैन सिद्धान्त का वर्णन पढ़ा है तब से मुझे विश्वास हुआ है कि इस सिद्धान्त में बहुत कुछ है जिसे वेदान्त के आचार्यों ने नहीं समझा। और जो कुछ मैं अब तक जैन धर्म को जान सका है उसमें मरा यह दृढ़ विश्वास हुआ है, कि यदि वे जैन धर्म को अपने मूल्य प्राप्ति के लक्ष्य के लक्ष्य तो उन्हें जैन धर्म का विचार करना ही चाहिए जान नहीं मिलती।

—महामहोपाध्याय डा० गगनाय ना

‘जैन धर्म के व्यापक सिद्धान्त का जितना ज्ञान समझा गया है उतना अन्य किसी सिद्धान्त को नहीं। यहाँ तब कि राजराजाय भी इस दृष्टि से मुक्त नहीं हैं। उन्होंने भी इस सिद्धान्त के प्रति अन्याय किया है। यह बात अल्प पुष्पा के लिए क्षम्य हो सकती थी किन्तु यदि मुझे कहने का अधिकार है, तो मैं भारत में इस महान् विज्ञान के लिए तो क्षम्य ही कहूँगा। यद्यपि मैं इस सादर की दृष्टि से देखता हूँ।



